नल-दमयन्ती

प्रकाशक—
पण्डित काशीनाथ जैन

कलकत्ता २०१, हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
पण्डित काशीनाथ जैन
द्वारा मुद्रित

नलदमयन्ती

प्रकाशक
वृहद् (वड)गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य
चन्द्रसिंहसूरीश्वर शिष्य
पण्डित काशीनाथ जैन

कलकत्ता
२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
मैनेजर पण्डित काशीनाथ जैन
द्वारा मुद्रित।

प्रथमवार १०००) सन् १९२४ (मूल्य ।।।)





प्रस्तावना

भारतवर्षमें 'नल-दमयन्ती' की कथा घर-घर प्रसिद्ध है। यह कथा स्त्री और पुरुष दोनोंहीके लिये अनेक अमूल्य उपदेशोंसे भरी है। किस प्रकार जुएके दुर्व्यसनने नल जैसे गुणवान् राजा-का सत्यानाश कर दिया, यह देखकर भला किसकी आँखें नहीं खुल जायेंगी और कौन नहीं दुर्व्यसनोंसे बचना चाहेगा? एकही अवगुण कभी कभी सारे गुणों पर पानी फेर देता है, यह बात नलके चरित्रसे स्पष्ट मालूम हो जाती है।

इसी तरह दमयन्तीका चरित्र भी प्रत्येक नारीके लिये उज्ज्वल आदर्शका काम देता है। किस प्रकार राजा की रानी होकर भी पतिके ऊपर विपत्ति आ पड़ने पर दमयन्तीने हँसते-हँसते दुःख-कष्टोंका पहाड़ अपने सिरपर उठा लिया, यह देख कौन नारी शिक्षा नहीं ग्रहण करेगी? जो ग्रहण करेगी, वह उसीकी तरह लाख दुःख यातना उठाकर भी अन्तमें सुख पायेगी और जो नहीं ग्रहण करेगी, वह अपना लोक और पर लोक दोनोंही बिगाड़ेगी।

हिन्दी जैन साहित्यकी सरल और सचित्र

उत्तमोत्तम पुस्तकें



परम पूजनीया विदुषी साध्वी शिरोमणि
श्रीमती सुवर्णा श्रीजी (मोहन श्रीजी)

समर्पण

जिनके उपदेशामृत द्वारा अनेकानेक जैन एवं अजैन नारियों का उद्धार हुआ है, जिन्होंने मारवाड और दक्षिण जैसे विषम प्रदेशमें विचरण करके अनेकानेक अबोध आत्माओंको धर्मोपदेश प्रदान किया है, जिनसे हमें हिन्दी जैन साहित्य के विकाश करने को प्रोत्साहन प्राप्त होने की पूर्ण आशा है, उन्हीं जैन समाज वन्दनीया, परोपकार परायणा, तत्वावबोधिका, गाभिर्यादिगुण समन्विता, श्रीमती साध्वी शिरोमणि, विदुषी **सुवर्ण श्रीजी (सोहन श्रीजी)** के कर-कमलों में यह मेरी लघु पुस्तिका सानुनय समर्पण करता हूँ।

भवदीय
काशीनाथ जैन

वृहद् खरतर गच्छीया साध्वी शिरोमणि
श्रीमती सुवर्णश्रीजी
का
संक्षिप्त जीवन परिचय

प्रसिद्ध नीतिकार भर्तृहरि ने क्याही ठीक लिखा है, कि

"परिवर्तिनि संसारे मृत को वा न जायते ?
स जातः येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्॥"

अर्थात्—इस परिवर्तनशील संसारमें कौन नहीं मरता और जन्म लेता ? पर जन्म लेना उसीका सार्थक है, जिसके जन्म लेनेसे उसका कुल और जाती उन्नतिको प्राप्त हो।

बात वस्तुतही ठीक है। जिसने संसारमें जन्म ग्रहणकर अपने कुल, अपनी जाति, अपने समाज और अपने देशकी उन्नति नहीं की, वह जन्मा या मरा, इसकी चिन्ता संसार नहीं करता, उसका जीना-मरना, दोनों बराबर हैं। इसके विपरीत, जिनके द्वारा किसी जाति, समाज या देशका उपकार साधित होता है, वे मरकर भी अपनी कीर्त्तिके द्वारा संसारमें अमर हो जाते हैं—

नास्ति तेषां यशःकाये जरामरणजं भयम्। उनके यश-रूपी शरीरको बुढ़ापा या मृत्युका भय नहीं होता। ऐसेही कुलके दीपक, जातिके गौरव और देशके भूषण-स्वरूप मनुष्योंका इस संसारमें जन्म लेना सार्थक है। सर्व साधारण भी इनके आदर्श जीवनका अनुकरण कर अपनेको उन्नत बना सकते हैं, क्योंकि आदर्श पुरुषोंके जीवन दूसरोंके लिये बड़े भारी मार्ग-प्रदर्शक का काम देते हैं। प्रसिद्ध अङ्गरेज-कवि लौंग फ़ेलोने लिखा है'—

"Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime—
And departing leave behind us,
Foot prints on the sands 'of time"

अर्थात्—महत् पुरुषोंके जीवन हमें इस बातकी याद दिला देते हैं, कि हम भी अपना जीवन उच्च बना सकते हैं' और संसारसे विदा होते समय वालुका-भूमिपर अपने पद-चिन्ह छोड़ जा सकते हैं, अर्थात् हम भी ऐसे ही हो जा सकते हैं, कि हमारे जीवनसे इस जीवन-रूपी मरु-भूमिमें सफर करते हुए लोग हमारे पद चिन्होंका अनुसरण करें।

वास्तवमें ऐसेही आदर्श-भूत मनुष्योंसे इस संसारकी शोभा है। आज हम जिनका जीवन परिचय पाठकों को दिया चाहते हैं, उनका जीवन भी वैसाही आदर्श है। इनके जीवनसे भी हम लोगोंको बहुत कुछ शिक्षा मिलती है।

भारतवर्षके दक्षिणमें "अहमदनगर" नामका एक बहुतही प्रसिद्ध नगर है। इसमें ओसवाल-जातिवालोंकी अच्छी बस्ती है। इसी जातिके भूषण-स्वरूप श्रीमान् सेठ योगीदासजी बोहरा नामके एक बड़ेही व्यापार-कुशल सज्जन वहाँ रहते थे। आपमें अनेक गुण थे, जिनके कारण अपनी जाति और नगरमे उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी धर्म-पत्नीका नाम श्रीमती दुर्गादेवी था। वे बड़ीही सच्चरित्रा, धर्म-परायणा, उदार और आदर्श पतिव्रता थीं। इन्हीं देवीजीके गर्भसे सम्वत् १६२७ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशीके दिन हमारी चरित्र-नायिकाने जन्म ग्रहण किया बालिकाका अद्भुत रूप-लावण्य देखकरही माता-पिताने उसका नाम "सुन्दरबाई" रखा। सुन्दरबाई केवल रूपमें ही सुन्दर नहीं थी, बल्कि उसमे गुण भी बहुतसे थे। बचपनसेही वह बड़ी उदार और उच्च-भावापन्न थी। विद्या लाभ करनेकी ओर भी उसकी बचपनसेही रुचि और प्रवृत्ति थी। कुमारावस्थामें ही सुन्दर-बाईने अच्छी शिक्षा प्राप्त करली और खूब विद्याध्ययन कर लिया। इस तरहकी अल्प अवस्थामें इतनी योग्यता शायदही कोई लड़की प्राप्त कर सकती हो।

जब सुन्दरबाईकी अवस्था प्राय ११ वर्षकी हुई, तब आपकी माता, आपका विवाह करनेकी इच्छासे, आपको लेकर जोधपुर रियासतके 'पीपाड़' नामक स्थानमें चली आयी। पीपाड़में भी इन लोगोंके घर-द्वार थे। यहीं आने पर पहले पहल सुन्दरबाई-को साधु-साध्वियोंके समागमका संयोग प्राप्त हुआ। उसी

समक्ष वैराग्य-पूर्ण देशनाएं सुन सुनकर सुन्दरबाईका चित्त संसारसे विरक्त होने लगा, परन्तु कर्मान्तरायसे अभी आपको गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना था, इस लिये संसार त्याग करनेका अवसर नहीं मिला।

सम्वत् १९३८ की माघ शुक्ला तृतीयाके दिन नागोर-निवासी श्रीमान् प्रतापचन्द्रजी भण्डारी (जो इस समय बम्बईमें विराजमान हैं) के साथ आपका शुभ विवाह हुआ।

बृहत्-खरतर-गच्छ-सम्प्रदायके श्रीमान् १००८ श्री सुखसागर जी महाराजके समुदायकी जगत्-विख्यात, शान्त-मूर्त्ति, गम्भीरता आदि गुणोंसे अलकृत श्रीमती पुण्यश्रीजी सं० १९४५ में नागोर पधारीं। वहांके अनेकानेक श्रावक और श्राविकाएँ उनका उपदेश श्रवण करनेके लिये उनके पास नित्य आने लगीं। एक दिन श्रीमतीजीने अपनी देशनामें कहा,—

"देखो, यह जीव अकेलाही इस ससारमें आया है और यहाँसे अकेलाही जायेगा। माता, पिता, भ्राता, पति, पत्नी और अन्यान्य कुटुम्बी पक्षीकी भाँति आकर इकट्ठे हो गये हैं। जैसे रातको बहुतसे पक्षी एक साथ बैठे रहते हैं और सवेरा होतेही जहांके तहाँ उड जाते हैं, वैसेही एक दिन ये कुटुम्बी भी अपनेसे अलग हो जाते हैं। अपना-अपना समय पूराकर सभी एक-एक करके चले जायेंगे। इसलिये मोहके जालमें न फंसकर जीवको आत्म साधनके काममें लगाना चाहिये।

इन तरहकी वैराग्यमयीबातें सुनते-सुनते सुन्दरबाईका हृदय

वैराग्य-रससे परिपूर्ण हो गया। एक तो लड़कपनसे ही उनके हृदयमें वैराग्यकी लहरें हिलोरें मार रही थीं, अबके श्रीमती पुण्यश्री जी की मधुर देशनाने सोनेमें सुहागेकासा काम किया। आपका वैराग्यभाव बहुतही पुष्ट हो गया। आपने उसी समय गुरुणीजी महाराजसे दीक्षा ग्रहण करनेका अपना विचार प्रकट किया।

यह सुनकर श्रीपुण्यश्रीजी महाराजने कहा,—"देखो, दीक्षा लेकर संसारकी कठिन शृंखलाको तोड़ देना, कोई साधारण कार्य नहीं है। अभी तुम्हारी अवस्था केवल अठारह वर्षकी है। अभी तो तुम गृहस्थाश्रममेंही रहो और धर्मध्यान करती हुई पुण्य-मय जीवन व्यतीत करो। इसके बाद समय आनेपर साध्वी-धर्मको अंगीकार कर लेना।"

यह सुनकर श्रीमती सुन्दरबाईने कहा,—"महाराज! इस शरीरका कोई ठिकाना नहीं है? अभी है, अभी नहीं है। इस लिये शुभकार्यमें कदापि विलम्ब नहीं करना चाहिये। ऐसे ऐसे कार्योंमें तो जहाँतक शीघ्रता की जाये, वही अच्छा है। अब आप कृपाकर मुझे शीघ्रही इस संसार बन्धनसे छुड़ा देनेकी कृपा करें।"

इसी प्रकार जब सुन्दरबाईने बहुत आग्रह करना आरम्भ किया, तब इनका हार्दिक वैराग्य-भाव देखकर श्री गुरुणीजीने कहा,—"अच्छा, यदि तुम्हारी दीक्षा लेनेकी इच्छा ऐसीही प्रबल है, तो पहले अपने घरवालोंसे इसके लिये आज्ञा माँग लो।"

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"—अर्थात् अच्छे कामोंमें बड़े-बड़े विघ्न आते ही हैं। पहले तो लोगोंने हमारी चरित्र-नायिकाके दीक्षा

ग्रहण करनेमें बड़ी-बड़ी अड़चनें डालीं, परन्तु अन्तमें सबको राजी करके उन्होंने संवत् १९४६ की मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी बुधवारके दिन प्रात:काल ८ बजे गृहस्थधर्मको छोड़कर गुरुणीजी से दीक्षा ले ली। उसी दिन से भगवान् महावीर स्वामीके बतलाये हुए सत्यमार्गको ग्रहण कर वे आत्म-कल्याणका साधन करने लगी। दीक्षा लेनेपर आपका नाम 'सुवर्णश्री' हो गया और तबसे आप इसी शुभ नामसे प्रसिद्ध हैं।

दीक्षा लेनेपर पञ्चमहाव्रतोंका पूर्णतया पालन करना और ज्ञान ध्यानमें लवलीन रहना ही साधु-साध्वियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। जो अपने इस कर्त्तव्यका पालन नहीं कर सकता, वह अपना ही कल्याण नहीं कर सकता। जब वह अपनाही कल्याण नहीं कर सकता, तब दूसरोंका कल्याण क्या खाक करेगा? यह तो और भी कठिन कार्य है। भगवान् महावीर स्वामीके इन्हीं उपदेशोंका स्मरण कर, वे सदा-सर्वदा ज्ञान-ध्यानमें ही अपना समय बिताने लगीं। ज्ञान बढ़नेके साथ-ही-साथ आपकी ध्यान-शक्ति भी क्रमश इतनी बढ़ गयी, कि इस समय दिन-रातके २४ घंटों मेंसे १२।१४ घंटे आपके ध्यानावस्थामेंही व्यतीत होते हैं। अधिक क्या कहा जाये, इतनाही कहना काफी होगा, कि आपमें आत्मिक ध्यान करनेकी अपूर्व शक्ति विद्यमान है। जबसे आपने दीक्षा ली है, तबसे आजतक अनेक प्रकारकी तपस्यायें कर चुकी हैं और यथाशक्ति अब भी करती ही जाती हैं। जहांतक हमें ज्ञात हुआ है, आप अट्ठाई, नवपदजीकी ओली और बीसस्थानक तप

करनेके साथ-साथ कठिनसिद्धि-तपका भी आराधन कर चुकी हैं। उपवासोंकी तो कोई गिनती ही नहीं है। आप एक ही समय में लगातार नौ, दस, ग्यारह, सत्रह, उन्नीस और इक्कीस उपवास तक कर चुकी हैं।

श्री १००८ श्री पुण्यश्रीजी महाराजकी शिष्यमण्डलीमें, जिसमें प्राय सवा सौ साध्वियाँ विद्यमान हैं, इस समय आपही सबमें प्रधान हैं। सं० १९७६ मिति फाल्गुन सुदी १० के दिन जयपुर-नगरमें पूज्य गुरुणीजी साहब श्री पुण्यश्री जी महाराजका स्वर्गवास हो जानेके बादसे समस्त शिष्य-समुदायका सारा भार आपके ही ऊपर आ पड़ा है।

आप बड़ी ही शान्त-स्वभावा और गम्भीर प्रकृति हैं। साथ ही आपमें यह एक विशेष गुण है, कि दुःखी और दीन मनुष्यों पर बड़ी दया रखती हैं। ऐसे लोगोंके चित्तको उपदेश द्वारा सन्तोष और धैर्य देते हुए यथाशक्ति सब भाँतिसे उनकी सहायता करती हैं। आपका यह पूर्ण विश्वास है, कि योंही व्यर्थ हजारों लाखों रुपये खर्च कर देनेसे जैन जातिका उद्धार कदापि न होगा। उद्धार तभी होगा, जब हम लोग अपने दीन दरिद्र, निस्सहाय और निराबलम्ब भाइयों और बहनों को अवलम्बन प्रदान करते हुए उनकी सब प्रकारसे सहायता करना सीखेंगे।

आपके आचार और विचार बड़ेही ऊँचे दर्जेके हैं। यहाँपर हमारे पास इतना स्थान नहीं, कि हम आपकी समस्त गुणावली का सविस्तार वर्णन कर सकें, हमारी इच्छा है कि, फिर किसी

दूसरे ग्रन्थमें आपका सारा सुविस्तृत जीवन पाठकों को प्रदर्शि करेंगे। आपने सं० १६८० का चातुर्मास आगरेमेंही किया था उस अवसरपर आपने एक बहुतही अच्छा और महत्त्व-पूर्ण का किया। आगरेसे थोडी दूरपर सौरीपुरजी नामका एक तीर्थ-स्था है। इसी स्थानपर अपने बाईसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथ स्वामीक च्यवन और जन्म- कल्याणक हो चुका है। आज अपने लोगोंक असावधानता और आलस्यसे वहाँकी ऐसी शोचनीय दशा ह रही थी, कि यदि थोडेदिन और उसको ओर ध्यान नहीं दिय जाता, तो तीर्थ-विच्छेद होनेमें कोई सन्देह नहीं था। कुछ सम पहले इस तीर्थके उद्धारके लिये ग्वालियरके सेठ नथमलजी गुले च्छाने बडी चेष्टा की थी—कुछ काम कर भी लिया था, प दुर्भाग्यवश उनका कारबार बिगड गया, इसलिये वे इस मह कार्यको पूरा नहीं कर सके।

"सुवर्णश्री" महाराजने इस तीर्थके जीर्णोद्धार के लिये कल कत्तेके श्रीमान् लक्ष्मीचन्दजी पारेखकी धर्मपत्नी श्रीमती पानबा को उपदेश देकर इस कार्यके लिये उत्साहित किया। वे ख इसके लिये तैयार हो गयीं और कई हजार रुपये देनेका वचन दे दिया। फिर महाराजने आगरा सघसे इसके विषयमें कहा यहाँका श्रीसंघ भी तन, मन, धनसे सहायता करनेके लिये तैयार हो गया। अब जीर्णोद्धारका कार्य बडी मुस्तैदीसे हो रहा है। आशा है, कि आगामी वैशाख-मासतक यह कार्य अवश्य ही सम्पन्न हो जायेगा।

अच्छे लोगोंका हाथ लग जानेपर सभी काम बन जाते हैं। श्रीजीका इधर ध्यान आकर्षित होतेही इस तीर्थका रूप बन जाने की पूरी सम्भावना हो गयी। अब इसके जीर्णोद्धारमें कोई सन्देह नहीं है।

आशा है, कि आप इसी तरह लोकोपकारके कार्य करनेके लिये अभी कुछ दिन और इस धराधामपर विद्यमान रहेंगी और अपने दर्शनों, उपदेशों और उपकारक कार्यों से हमारा सदैव कल्याण करती रहेंगी।

शेषमें हम अपने मित्र बाबू जवाहिरलालजी लोढा को सहर्ष साधुवाद देते हैं, जिन्होंने हमारी प्रातःस्मरणीया सोहन श्रीजी का संक्षिप्त जीवन परीचय छापकर हमें कृतज्ञ किया है।

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन।



आभार

इस पुस्तिकाके प्रकाशन में, श्रीमती साद्ध्वीजी लालश्रीजी के सदुपदेश द्वारा जोधपुर निवासी सेठजी छगनराजजी भणशालीकी स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती आशाबाई के स्मरणार्थ रु० १००) की आर्थिक सहायता मिली है, एतदर्थ हम साद्ध्वीजी लालश्रीजी के पूर्ण आभारी हैं।

आशा है, साद्ध्वीजी इस तरह ज्ञान प्रचारके काममें सदैव उपदेश प्रदान कर उत्तरोत्तर और पुस्तकोंके लिये भी आर्थिक सहायता प्रदान करवाकर हमारे उत्साह को बढ़ाती रहेंगी।

आपका—काशीनाथ जैन

नल-दमयन्ती

पहला परिच्छेद

इस पुण्य-भूमि भारतवर्षके कोसल-प्रदेशमें इन्द्रकी अमरावती नगरीसे भी कहीं अधिक सुहावनी, सुख-समृद्धि-शालिनी और नाना प्रकारकी मनोहर अट्टालिकाओंसे सुशोभित कोसला नामकी एक परम रमणीय नगरी थी। वहां सम्पूर्ण वैरी-वृन्दको पराजित कर सर्वत्र अपनी विजय-पताका फहरानेवाले, न्याय और नीतिमें पूर्ण निष्ठा रखनेवाले, प्रजापालनमें सदा—सब तरहसे—तत्पर रहनेवाले निषध नामके एक राजा राज्य करते थे। राजा निषध बड़ेही दयालु, धर्मात्मा, न्यायी और सदाचारी थे। वे अपनी प्रजाको पुत्रके समान मानते थे और उसका दुःख-दर्द दूर करनेके लिये सदा तैयार रहते थे। उनके राज्यमें प्रजाको रोग, शोक, अकाल और

महामारी आदिका कभी सामना नहीं करना पड़ता था। राज्यके कर्मचारियों पर स्वयं राजाका ऐसा अङ्कुश रहता था, कि वे कभी प्रजापर अत्याचार नहीं करने पाते थे। जहाँ राजा प्रजाकी ओरसे कानमें तेल डाले पड़े रहते हैं और अपने कर्मचारियोंकी ही कही हुई बातोंको सच समझा करते हैं, वहाँ कर्मचारी अपनेको प्रजाका सेवक नहीं, बल्कि सोलह आने मालिक समझने लगते हैं और मनमाने ढङ्ग से प्रजाको लूटते-खसोटते तथा मारते-कूटते हैं। परन्तु निषधकेसे चतुर राजाके यहाँ ऐसी धाँधली नहीं होने पाती थी, क्योंकि वे स्वयं अपनी प्रजाके अभाव-अभियोग तथा आवश्यकताओं पर ध्यान दिया करते थे और किसीको मनमानी घरजानी करनेका अवसर हाथ नहीं लगने देते थे। इस प्रकारका प्रजाप्रिय नृपति प्राप्तकर, कोसल-देशकी प्रजा अपने भाग्यकी बारम्बार बड़ाई करती और हर तरहके सुख भोग रही थी। जैसा राजा-वैसी प्रजा—यह पुरानी कहावत इसी राज्यमें सच्ची साबित हो गयी थी। जैसे धर्मात्मा और न्यायी यहाँके राजा थे, वैसे ही धर्मात्मा, विवेकी और निरन्तर न्यायमें निष्ठा रखनेवाले मनुष्य भी उस राज्यमें बसते थे। साराश यह, कि राजासे सारी प्रजा सन्तुष्ट रहती थी और राजाको भी अपनी प्रजाकी ओरसे कोई खुटका (सन्देह) नहीं था।

पूर्व-पुण्यके प्रभावसे राजा निषधको दो पुत्र प्राप्त हुए थे। बड़ेका नाम नल और छोटेका कूबर था। दोनोंही राज-

कुमार शील, सौन्दर्य, बुद्धि और प्रतिभामें बढ़े-चढ़े थे। क्रमश. गुरुके निकट रहकर, दोनों राजकुमारोंने राजकुमारोंके योग्य शिक्षा प्राप्त की और सब कलाओंमें प्रवीण हो गये। दिन बीतते देर नहीं लगती। राजकुमारोंने धीरे-धीरे बालकपन और किशोरावस्था पारकर यौवनमें पैर रखा।

एक दिन राजा निषध अपनी राजसभामें बैठे हुए राज-कार्यका निरीक्षण कर रहे थे, इसी समय विदर्भ-देशके राजा भीमका भेजा हुआ दूत वहाँ आ पहुँचा और राजाको विधि-वत् प्रणाम कर, हाथ जोड़े हुए कहने लगा,—

"हे महाराज! विदर्भ-देशमें कुण्डिनपुर नामक एक नगर है। उसमें भीमरथ नामके राजा रहते हैं। उनके एक बड़ीही सुन्दरी और गुणवती कन्या है। उसके रूप-लावण्यकी चारों ओर प्रशंसा फैली हुई है। उस सौन्दर्यका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता—वह आँखों देखनेकी ही चीज़ है। उसका वह अनुपम लावण्य देखकर आँखोंपर अमृतसा बरस जाता है। शायद विधाताके हाथोंको वैसी कारीगरी कभी नहीं प्रकट हुई, जैसी उसने उस राजकुमारीके बनानेमें खर्च की है। महाराज मैं अधिक क्या कहूँ? उस राजकन्याकी सी सुन्दरी शायद ही इस पृथ्वीपर कभी देखनेमें आयी हो। उसका नाम भी बड़ाही सुन्दर है। लोग उसे दमयन्ती कहते हैं। जैसे सब जलाशयोंको छोड़कर हंस मानसरोवरके पास ही आ रहते हैं, वैसेही समस्त उत्तम गुण बिना बुलाये दम-

यन्तीके पास चले आये हैं। राजकुमारी विवाह-योग्य हो गयी है, इसलिये राजा उसके योग्य वरकी खोजमें है, परन्तु आजतक उसके समान शील, सौन्दर्य और गुणोंसे भरा-पूरा कोई वर नहीं मिला। इसीलिये राजाने स्वयंवर रचाया है और उसमें पधारनेके लिये सब देशोंके राजा-राजकुमारोंके पास निमंत्रण भिजवाया है। मैं भी उसीके लिये आपको निमन्त्रण देने आया हूँ। अतएव आप कृपाकर अपने दोनों राजकुमारोंके साथ वहाँ पधारें और हमारे राजाको कृतार्थ करें, यही मेरी प्रार्थना है।"

दूतकी यह बात सुन, राजाने सादर राजा भीमरथका निमन्त्रण स्वीकार किया और उस दूतका भलीभाँति आदर-सत्कार किया। जाते समय उस दूतको मुँहमाँगा इनाम भी राजाकी ओरसे दिया गया। इसके बाद राजा विदर्भ-देश जानेकी तैयारी करने लगे। उनके साथ जानेके लिये बहुत बड़ी सेना सज्जित हुई। एक दिन शुभ मुहूर्त्तमें अपने सब सैनिकों और सेवकोंके साथ राजा निषध, अपने दोनों राजकुमारोंको संग लिये, दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। क्रमशः महीनोंकी यात्रा कर, स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुए वे लोग कुण्डिनपुरमें आ पहुँचे। विदर्भ-देशके राजाने इन लोगोंको बड़ी प्रीति और भक्तिके साथ स्वागत करते हुए केलि-वनमें ले जाकर पधराया। उसी समय स्वयंवरके निमित्त अन्यान्य देशोंके जो राजागण वहाँ आये, उनलोगोंको भी विदर्भ-नरेशने

बड़े आदरके साथ अलग-अलग स्थानोंमें ठहराया। देश-देशके भिन्न-भिन्न रूप-रङ्गवाले मनुष्योंके आगमनसे कुण्डिन-पुरमें खासी चहल-पहल हो गयी। जगह-जगह खेल-तमाशे और नाच गानका रङ्ग जम गया। भिन्न-भिन्न राजाओंके रंग बिरंगे डेरे-खीमे गड़ गये—उन पर रंग-बिरंगी पताकाएँ फहराने लगीं। कुण्डिनपुरके भुण्ड-के-भुण्ड लोग आकर उन डेरे-तम्बुओंको देखने लगे। सबकी अपेक्षा निषध देश-के ही राजाका सुन्दर डेरा लोगोंको बहुत ही पसन्द आया। उस डेरेके भीतर झाँक कर लोगोंने जब राजकुमार नलको देखा, तब तो उनकी सुन्दरताने सबकी आँखोंमें चकाचौंधसी लगा दी। सब लोग उस कामदेवके समान सुन्दर रूपवाले नलको देखकर कहने लगे,—"बस यही राजकुमार दमयन्तीके योग्य वर है। अच्छा हो, यदि राजा भीमरथ, सबको छोड़ कर इसीके साथ दमयन्तीका विवाह कर दें।

नियत समय पर सब लोग स्वयंवर-मण्डपमें आ विराजे। सभी राजा-राजकुमार बड़े ठाट-बाटसे भड़कीली पोशाकें पहने बैठे हुए थे। कोसल-नरेश भी अपने दोनों पुत्रोंके साथ मणि-रत्न-जटित सिंहासन पर बैठे हुए नक्षत्रोंके बीच शोभित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। सबके बीचमें राजकुमार नल सहस्ररश्मि सूर्यके समान सबकी ज्योतिको मन्द करते हुए विराजमान थे। उनका तेज देखकर सबकी आँखें झिप जाती थीं। न मालूम क्यों, सबके दिलमें रह-रह

सूर्यकासा प्रकाश फैल जानेसे यह जो मनुष्यकासा आकार दिखाई दे रहा है, वह क्या है ?"

दमयन्तीने कहा,—"स्वामी! वे बालब्रह्मचारी हैं। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंको जीत लिया है। प्राणनाथ! इस जंगलके रहनेवाले हाथी, इन मुनिवरको पर्वत समझकर, इनके शरीरमें अपनी पीठ घिसा करते थे, इसीलिये इनका ध्यान टूट गया है। इतनेमें हाथियोंकी गलपट्टोंसे चूते हुए मदजलके लोभसे भौंरे आ-आकर मुनिको दुःख दे रहे हैं, इसीसे वे बड़े क्लेशमें हैं।"

यह सुन, राजकुमार नल अपना रथ मुनिके पास ले आये। तदनन्तर उसपरसे नीचे उतरकर दोनों स्त्री-पुरुषने उन्हें प्रणाम किया। भौंरोंके उत्पातको देख, उन्हें मुनिकी दशापर तरस आ गया। मुनिने अपने ध्यानसे यह बात जान ली। तदनन्तर भौंरोंके उपद्रवोंको शान्तकर मुनिने कहा,—"हे दम्पती! सुनो—धर्म कोई नयी वस्तु नहीं है, जिसके विषयमें उपदेश करनेकी आवश्यकता हो। धर्म सारे संसारमें प्रसिद्ध और पुरातन वस्तु है। मनुष्य-मात्रको इसका सर्वदा आचरण करना चाहिये। (नलकी ओर देखकर) हे राजकुमार नल! तुम्हारी स्त्री दमयन्ती, पूर्वजन्ममें, चौबीसों तीर्थङ्करोंको स्मरण कर नाना प्रकारके तप, दान आदि शुभकृत्य कर चुकी है, इसीलिये इसे इस जन्ममें सूर्यकी ज्योतिको भी मन्द करनेवाली ललाट-ज्योति प्राप्त हुई है। तुमने भी पिछले जन्ममें उत्त-



यह सुन, राजकुमार नल अपना रथ मुनिके पास ले आये। तदनन्तर उसपरसे नीचे उतरकर दोनों स्त्री-पुरुषने उन्हे प्रणाम किया।

(पृष्ठ १२)

मोत्तम तप, दान आदि धर्मके कार्य किये हैं, इसीलिये तुम्हें दमयन्ती पत्नी-रूपमें प्राप्त हुई है। इसके बाद आगे आने-वाले भवोंमें भी तुम्हें सदा सुख-शान्ति प्राप्त होती रहेगी।"

मुनिकी यह बात सुन, दोनों वर वधू बड़े प्रसन्न हुए और रथपर सवार हो आगे चले। इसी प्रकार आगे चलते-चलते वे अपनी राजधानीके पास पहुँचे। वहाँ एक सुन्दर-सुहावनी फुलवारी देख, नलको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने अपनी नव-विवाहिता पत्नीसे कहा,—"प्यारी! अब यहींसे तुम हमारी राजधानीकी सुन्दर रचना देखो। यह फुलवारी हमें बतला रही है, कि हमारी राजधानी अब बहुत ही निकट है, उसकी बाहरी-भीतरी सुन्दरता देखनेके लिये तैयार हो जाओ। इस-लिये प्राणप्यारी! तुम्हारी ससुराल अब बहुत पास आ गयी है—उसकी सुन्दरता देखनेके लिये अपनी आँखें बिछाये रहो। उसमें जगह-जगह पर सुहावने सरोवर, वन, उप-वन तथा स्त्रियोंके विहार करनेके लिये रमणीय वापियाँ बनी हुई हैं।"

इसके बाद ज्यों-ज्यों नल अपनी राजधानीके पास पहुँचने लगे, त्यों-त्यों बीचमें पड़नेवाले स्थानोंको अपनी प्यारी पत्नी दमयन्तीको दिखलाने और उनका परिचय देने लगे। दम-यन्ती भी उन स्थानोंको भली भाँति देखती-भालती हुई चलने लगी। इसी तरह दोनों प्रिया-प्रियतमने बड़े आनन्दसे रास्ता किया और अपनी राजधानीके बिलकुल पास आ गये।

उस दिन बड़े ही शुभ मुहूर्त्तमें निषध राजाने, सब बरातियों और नव-विवाहित वर-वधूके साथ, नगरमें प्रवेश किया। उस समय ऐसा मालूम हुआ, मानों देवराज इन्द्र, युद्धमें विजय प्राप्त कर, अमरपुरीमें प्रवेश कर रहे हों। आगे-आगे वर-वधू और पीछे-पीछे सब स्वजनों तथा सेवक-सैनिकोंके साथ राजा नगरके भिन्न-भिन्न राजपथोंसे होकर जाने लगे। उस परम सुन्दर नगरको ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंको देखकर दमयन्तीको बड़ा ही हर्ष हुआ, उस समय तो उसके आनन्दकी कोई सीमाही न रही, जब उसने उस परम रमणीय और विशाल राजमन्दिरमें प्रवेश किया। राजमहलमें वर-वधूका प्रवेश हो जानेके बाद सब लोग जहाँ-तहाँ चले गये। नगरभरमें जगह-जगह आनन्दके बधावे बजने आरम्भ हो गये। सारी नगरीने आनन्दमयी मूर्त्ति धारण कर ली।

राजकुमार नलने दमयन्तीकी सी सुन्दरी, सुशीला, सदाचारिणी और विनयकी मूर्त्तिके समान पत्नी पाकर अपने भाग्यकी बार-बार प्रशंसा की और उनके समान सब गुणोंकी खान स्वामी पाकर दमयन्तीने भी अनमिल जोड़ी मिलानेवाले विधाताको बार-बार धन्यवाद दिया। नगरके लोग और लुगाइयाँ भी नल और दमयन्तीकी यह समान जोड़ी देख, सौ-सौ मुँहसे हर्ष प्रकट करने लगीं। इधर नये विवाहित जीवनके आनन्द और प्रीतिमें लीन होकर नल और दमयन्तीको भी संसारकी सुधि भूल गयी। वे कभी तो मनोहर पर्वतके

ऊपर क्रीडाके निमित्त चले जाते, कभी सुन्दर सुहावने वनमें जाकर तरह-तरहसे दिल बहलाते, कभी फुलवारियोंमें मौज-बहार लूटते, कभी जल-क्रीडामें दिन बिताते, कभी बागीचेमें जाकर पुष्पक्रीड़ा करते,—फूल तोड़-तोड़ कर एक दूसरे पर उछालते अथवा उनके हार बनाकर एक दूसरेको पहनाते या मुकुट बनाकर एक दूसरेके सिरपर रख देते। इसी प्रकार वे दम्पती भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे सुख भोग करते हुए समय बिताने लगे। उनका यह आनन्द, यह सुख सौभाग्य-यह प्रीति-विलास, यह रङ्ग तरङ्ग देख, माता पिताके हर्ष और आनन्दकी सीमा न रही।

सुखके दिनोंका यह स्वभाव है, कि वे हवाके परोंपर उड़ते चले जाते हैं—उनके बीतते देर नहीं लगती। नल और दमयन्तीके विवाहके बाद कितनेही वर्ष इस आनन्दके साथ व्यतीत हो गये, कि कुछ मालूम हो नहीं पड़ा, कि ये दिन किधरसे आये और किधर चले गये।





दूसरा परिच्छेद

बन्धु-विरोध


सी तरह कितने ही वर्ष बीत गये। दिन, महीना, वर्ष करते-करते कई वर्षोंका समय निकल गया। धीरे-धीरे निषध-राजाका बुढापा आ पहुँचा। उनकी इन्द्रियाँ शिथिल होने लगीं—मस्तिष्क दिन-दिन दुर्बल होने लगा। राजकार्यसे उन्हें घृणा और विरक्ति होने लगी। उन्होंने सोचा, कि अब अपनेको इस झंझटमें रखना ठीक नहीं। अब मेरी अवस्था राज्य करनेकी नहीं—धर्माचरण करनेकी है। क्रमश यह विचार दृढ होता चला गया और उन्होंने मन्त्रियों की सलाहसे एक दिन अच्छा मुहूर्त्त देख, राजकुमार नलको सिंहासन पर बैठा दिया और कूबरको युवराजकी पदवी प्रदानकी। इस प्रकार अपने राज्यकी यथोचित व्यवस्था करनेके बाद राजा निषध, चारित्र ग्रहण कर, वनमें तपस्या करने चले गये।

पिताके वनमें चले जानेके बादसे राजा नलने अपने राज्यका रथ इस प्रकार कुशलता, चतुरता, नीतिज्ञता और

प्रजाप्रियताके साथ चलाना आरम्भ किया, कि उनकी चारो ओर प्रशंसा होने लगी। उनके यश, तेज और प्रतापकी दिन-दिन वृद्धि होने लगी। प्रजा उनसे सदा प्रसन्न रहने लगी। जैसे गरमीके दिन बीतनेपर वर्षा-ऋतुके नये-नये मेघोंको देख कर सब लोगोंको आनन्द होता है, वैसे ही बूढ़े राजाके बाद इस नवीन राजाको पाकर सब प्रजाजन आनन्दित हो उठे। जैसे पानीके भारसे झुके हुए बादलोंको देखकर लोगों-को बड़ी प्रसन्नता होती है, वैसे ही राजा नल, दिन-दिन लक्ष्मीकी अधिकतासे शोभा पाने लगे और अपने समस्त प्रिय-जनों और पुरजनोंको अधिकाधिक आनन्द देने लगे। अपने प्रतापरूपी अग्निमें शत्रुओंकी स्त्रियोंके मोतीके हारोंको भस्म करके, मानों उसी भस्मसे राजा नलने अपने महलोंपर सफ़ेदी करवायी थी। जैसे कल्पान्तकालकी अग्नि समुद्रमें डूब जाती है, वैसे ही शत्रुओंकी लक्ष्मी नलके खड्गरूपी जलमें डूब गयी। जैसे सूर्य सारे संसारमें अपनी किरणोंका प्रकाश फैला देता है, वैसे ही राजा नलने अपनी सत्ता पृथ्वीके आधे भाग पर बैठा दी। जैसे सब देवता इन्द्रकी अधीनता स्वीकार किये बैठे हैं, वैसे ही क्रमशः सब राजाओंने राजा नलको अपना अधिपति मान लिया। इस प्रकार राजा नलने पिताके समयसे अपने राज्यकी कहीं अधिक उन्नति कर डाली और सर्व-सम्पत्ति सम्पन्न होकर सानन्द राज्य करना आरम्भ किया।

इधर उनके भाई कूबरके मनमें डाहकी आग धीरे-धीरे

सुलग रही थी। वे सदा राजा नलकी बुराई करनेकी ताकमें लगे रहते थे। राजा नलकी हरएक बातमें वे बुराई ढूँढ़ा करते थे। क्या शिकारमें, क्या भोजनमें, क्या राजकाजमें, क्या राजनीतिमें, क्या क्रीड़ा-कौतुकमें—सभी कामोंमें वे नलका छिद्रान्वेषण करनेको ही तैयार रहते थे। कूबरकी यह कुवासना और ईर्षा राजा नलसे छिपी हुई नहीं थी। वे अच्छी तरह पहचान गये थे, कि मेरे भाईके मनमें मेरे प्रति डाह पैदा हो गया है और मेरा इस सिंहासनपर बैठना, इसे फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। परन्तु वे ऊपरसे यह बात प्रकट नहीं होने देते थे और पहलेकी ही भाँति अपने छोटे भाईके साथ स्नेहमय व्यवहार करते थे। पर भाईकी यह सरलता भी कूबरकी अच्छी नहीं लगती थी। वे इसी ताकमें थे, कि कैसे इस राज्यको हड़प कर जाऊँ।

एक दिनकी बात है, कि राजा नल, दिल बहलानेके लिये अपने भाई कूबरके साथ जुआ खेलने बैठे। समयके प्रभावसे उस दिन राजा नलके पाँसे बराबर उलटे पड़ते चले गये, हर बाज़ीमें कूबरकी ही जीत होती चली गयी। क्रमशः राजा नल, जुएमें नगर, ग्राम, देश और अन्यान्य सम्पत्तियाँ हारते चले गये। इस प्रकार कृष्णपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति नलकी सम्पत्ति लगातार क्षीण होती चली गयी। परंतु इस हारसे भी नलने हिम्मत नहीं हारी—वे और भी जोशके साथ जुआ खेलने लगे। धीरे-धीरे राजा नल अपना यथा-सर्वस्व

हार बैठे। इसी समय दमयन्तीने वहाँ आकर कहा,—"नाथ! आप यह क्या कर रहे हैं? आपको ऐसा करना कदापि उचित नहीं है। जुआका खेल कोई अच्छा मनोविनोद नहीं है। महाराज! आपकेसे श्रेष्ठपुरुष ही यदि ऐसा आचरण करेंगे, तो फिर और लोगोंकी क्या बात है? उन्हें फिर कौन उपदेश देगा? यद्यपि आपको जुएका बहुत पुराना शौक है, तथापि आजका खेल तो और दिनोंकी अपेक्षा कुछ और ही ढंगका दिखलाई देता है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि इसका कोई बुरा परिणाम होनेवाला है। यह तो साफ़ ही अशुभ-सूचक मालूम पड़ता है, कि आपकी बाज़ी हर दाँवमें मात होती चली जाती है। अब भी पाँसे फेंक-फाँक कर अलग हो जाइये। अब दाँवपर लगने योग्य आपके पास रहही क्या गया है, जो अब भी जोंककी तरह खेलसे चिपके हुए हैं? अब तो आप अपना सर्वस्व हार चुके। इसलिये, चुपचाप युवराज कूवरको राज्य सौंप कर कहीं चले चलिये, नहीं तो बेइज्जतीके साथ इस राज्यसे निकाल कर बाहर कर दिये जायेंगे। दैवयोगसे जो होना था, वह तो हो होगया, अब अधिक अपमान सहन करनेका क्या काम है? जो हो गया, उसी पर सन्तोष कीजिये—अब राज्य वापिस मिलनेकी आशा से फिर पाँसे फेंकनेकी इच्छा न कीजिये।"

इस प्रकार दमयन्तीने नलको बहुतेरा समझाया-बुझाया, पर उन्होंने उसकी एक न सुनी, तब दमयन्तीने अन्यान्य

सुलग रही थी। वे सदा राजा नलकी बुराई करनेकी ताकमें लगे रहते थे। राजा नलकी हरएक बातमें वे बुराई ढूँढ़ा करते थे। क्या शिकारमें, क्या भोजनमें, क्या राजकाजमें, क्या राजनीतिमें, क्या क्रीड़ा-कौतुकमें—सभी कामोंमें वे नलका छिद्रान्वेषण करनेको ही तैयार रहते थे। कूबरकी यह कुवासना और ईर्षा राजा नलसे छिपी हुई नहीं थी। वे अच्छी तरह पहचान गये थे, कि मेरे भाईके मनमें मेरे प्रति डाह पैदा हो गया है और मेरा इस सिंहासनपर बैठना, इसे फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। परन्तु वे ऊपरसे यह बात प्रकट नहीं होने देते थे और पहलेकी ही भाँति अपने छोटे भाईके साथ स्नेहमय व्यवहार करते थे। पर भाईकी यह सरलता भी कूबरको अच्छी नहीं लगती थी। वे इसी ताकमें थे, कि कैसे इस राज्यको हड़प कर जाऊँ।

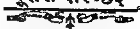
एक दिनकी बात है, कि राजा नल, दिल बहलानेके लिये अपने भाई कूबरके साथ जुआ खेलने बैठे। समयके प्रभावसे उस दिन राजा नलके पाँसे बराबर उलटे पड़ते चले गये, हर बाज़ीमें कूबरकी ही जीत होती चली गयी। क्रमशः राजा नल, जुएमें नगर, ग्राम, खेत और अन्यान्य सम्पत्तियाँ हारते चले गये। इस प्रकार कृष्णपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति नलकी सम्पत्ति लगातार क्षीण होती चली गयी। परंतु इस हारसे भी नलने हिम्मत नहीं हारी—वे और भी जोशके साथ जुआ खेलने लगे। धीरे-धीरे राजा नल अपना यथा-सर्वस्व

हार बैठे। इसी समय दमयन्तीने वहाँ आकर कहा,—"नाथ! आप यह क्या कर रहे हैं? आपको ऐसा करना कदापि उचित नहीं है। जुआका खेल कोई अच्छा मनोविनोद नहीं है। महाराज! आपकेसे श्रेष्टपुरुष हो, यदि ऐसा आचरण करेंगे, तो, फिर और लोगोंकी क्या बात है? उन्हें फिर कौन उपदेश देगा? यद्यपि आपको जुएका बहुत पुराना शौक है, तथापि आजका खेल, तो और दिनोंकी अपेक्षा कुछ और ही ढंगका दिखलाई देता है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि इसका कोई बुरा परिणाम होनेवाला है। यह तो साफ़ ही अशुभ-सूचक मालूम पड़ता है, कि आपको बाज़ी हर दाँवमें मात होती चली जाती है। अब भी पाँसे फ़ेंक-फाँक कर अलग हो जाइये। अब दाँवपर लगने योग्य आपके पास रहही क्या गया है, जो अब भी जोंककी तरह खेलसे चिपके हुए हैं? अब तो आप अपना सर्वस्व हार चुके। इसलिये चुपचाप युवराज कूवरको राज्य सौंप कर कहीं चले चलिये, नहीं तो बेइज्जतीके साथ इस राज्यसे निकाल कर बाहर कर दिये जायेंगे। दैवयोगसे जो होना था, वह तो हो हीगया, अब अधिक अपमान सहन करनेका क्या काम है? जो हो गया, उसी पर सन्तोष कीजिये—अब राज्य वापिस मिलनेकी आशा से फिर पाँसे फ़ेंकनेकी इच्छा न कीजिये।"

इस प्रकार दमयन्तीने नलको बहुतेरा समझाया-बुझाया, पर उन्होंने उसकी एक न सुनी, तब दमयन्तीने अन्यान्य

अच्छे-अच्छे लोगोंसे भी राजाको बहुत कुछ कहलवाया, परन्तु जुएका भूत सिर पर सवार होनेके कारण नलने उन लोगोंकी बातें भी अनसुनी कर दीं और फिर उत्साहके साथ खेलने लगे। विधाता जब प्रतिकूल हो जाते हैं, तब मनुष्यकी बुद्धिका दिवाला निकल जाता है। यही हाल राजा नलका भी हुआ। उन्हें किसीका हितोपदेश अच्छा नहीं लगा। वे जुआ खेलते ही चले गये। जैसे प्रातःकाल होते ही चन्द्रमा चाँदनीके साथ-साथ समस्त नक्षत्रोंको भी खो देता है, वैसे ही राजा नल अपनी प्राणप्यारी पत्नी और सब मन्त्री-पारिषदोंको भी हार बैठे। शरीर परके वस्त्र और आभूषण भी दाँव पर लग गये। इनके पास अब अपना कुछ भी नहीं रहा। अबके कूबरने तेवर बदले और पैशाचिक आनन्दसे प्रफुल्लित होते हुए नलसे कहा,—"भाई साहब! अब आप शीघ्र ही इस नगरको छोड़कर जहाँ जी चाहे चले जाइये। पिताके दिये हुए राज्यको आपने इतने दिन भली भाँति भोगा, अबके मेरी बारी है। मैंने आपसे सब कुछ जुएमें जीत लिया। यह मेरे बापका धन नहीं, मेरा निजका उपार्जित धन है। इसमें आपका कोई हिस्सा नहीं, इसलिये आप अब यहाँसे शीघ्र ही चले जाइये, जिससे मुझे राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ले लेनेका मौका मिले।"

कूबरकी यह बात सुन, राजा नलने झुँझलाते हुए कहा,—"कूबर! तुम इतना घमंड क्यों करते हो? राज्य पा लेना कोई बड़ी बात नहीं है। जिसकी भुजाओंमें बल है, वह अनायास



राजलक्ष्मीको प्राप्त कर सकता है। मुझे अपने हाथसे निकल कर तुम्हारे हाथमें राज्य चले जानेका तनिक भी दुःख नहीं है। मैं अभी यह नगर छोड़े देता हूँ। तुम रहनेको कहते, तो भी मैं यहाँ नहीं रहता।"

यह कह, राजा नल केवल एक धोती पहने हुए वहाँसे चल निकले। उनके पीछे-पीछे दमयन्ती भी चली। यह देख, कूबरने कहा,—"सुन्दरी! भला तुम कहाँ जा रही हो? तुम्हें तो मैंने जीत लिया है। इसलिये तुम कदापि नलके पीछे-पीछे नहीं जाने पाओगी। तुम्हारा-उनका अब कोई सम्बन्ध नहीं है। साथ जानेकी बात तो दूर रहे, तुम्हें अब उनका स्मरण करना या मुँह देखना भी मुहाल हो जायेगा।"

देवरके ऐसे कठोर वचन, राज्य-नाशसे भी न घबरानेवाली दमयन्तीका हृदय विदीर्ण हो गया और उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली। यह देख, सब लोग, जो इस बन्धु-विरोधका तमाशा बड़ी देरसे चुपचाप देख और नलकी मूर्खता पर तरस खा रहे थे, बोल उठे,—"युवराज कूबर! यह आप अच्छा नहीं कर रहे हैं। इससे आपकी कदापि भलाई नहीं होगी। जैसे सिंहके पीछे-पीछे जाती हुई सिंहनीको रोकने वाला शृगाल मारा जाता है, वैसे ही राजा नलके पीछे-पीछे जाती हुई दमयन्तीको रोक कर आप भी अपनी मौत को पास बुला रहे हैं। बड़े भाईकी स्त्री माताके समान है। उन्हें रोक कर आपको कौनसा लाभ होगा? आपके लिये यही

उचित है, कि दमयन्ती देवीको प्रणामकर उन्हें नलके साथ ही रथ पर बैठाकर यहांसे भेज दें। ऐसा नहीं करनेसे आपकी बड़ी बदनामी होगी। यदि आप हमारा यह कहना नहीं मानेंगे, तो आपकी बड़ी दुर्गति होगी।"

जब सब लोगोंने इस प्रकार दृढ़ताके साथ कूबरको फटकारा, तब उन्होंने दमयन्तीको रथमें बैठाकर नलके साथ ही जानेको कह दिया। दमयतीको रथपर सवार देख, राजा नलने कहा,—"कूबर! मुझे तुम्हारे रथसे कोई प्रयोजन नहीं है।"

कूबरने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब राजा नल दमयन्तीको आगे कर, आप उसके पीछे-पीछे पैदल चलने लगे। नलके चले जानेपर कूबरने बड़े ज़ोरसे दुन्दुभि बजवायी। उसे सुनते ही सारे नगरके लोग हाहाकार कर उठे और कूबरको धिक्कार देने लगे।

राजा नलकेसे प्रजाप्रिय राजाको खोकर प्रजा मानों अनाथ हो गयी। कूबरका स्वभाव बालकपनसे ही जैसा उग्र था और युवराजकी हैसियतसे ही उन्होंने प्रजाके साथ जिस तरह कड़ाईके साथ वर्त्ताव किया था। उससे सभी लोग डर गये, कि अबके कूबरके राजत्व कालमें हमारा कल्याण नहीं होगा। यह अवश्यही हम लोगोंको पीस डालेंगे। पर समय पाकर अवस्थामें भेद होनेपर मनुष्यका स्वभाव बहुत कुछ बदल जाता है, इसी आशा पर प्रजा चुपचाप मन मारे रह गयी। उसने कूबरको तुरत पाये हुए अधिकारको उलट देनेका कोई प्रयत्न नहीं किया।

तीसरा परिच्छेद।

वियोग

समय एकसा कभी नहीं रहता। जो कभी फूलोंकी सेज पर सोते हुए कष्ट अनुभव करता है, उसेही समय एक दिन काँटों, लकड़ोंकी सेजपर सुला देता है। जिनसिरों पर किसी दिन मुकुट-मणिकी ज्योति जगमगाती है, उन्हींपर एक दिन रास्तेकी धूल उड़-उड़ कर पड़ा करती है। जिन्हें सदा सेव-नासपाती खानेको मिलती है, उन्हें एक दिन वनस्पति भी सुहाल हो जाती है। इसीसे किसीने कहा है, कि—"किसीकी बनी रही है, किसकी बनी रहेगी ?"

राजा नल और रानी दमयन्ती भी आज उसी तरह समयके फेरमें पड़कर-जङ्गल पहाड़ोंकी खाक छान रहे हैं। अनेक नगर, ग्राम, नदी, पहाड़ पार करके जङ्गलोंकी सैर कर रहे हैं। जिन्हें सेजसे उठकर दो पग चलना भी पहाड़ मालूम पड़ता था—आज वे कितनी बड़ी मंजिल मार चुके हैं, यह उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती हुई देखकर ही अनुमानमें आ जाता है। उनके वह कुसुमसे कोमल शरीर और वह वज्रसी कठिन

विपत्ति देख, मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, पशु-पक्षियोंके भी कलेजे फटने लगते थे। जब कभी वे लोग घूमते-फिरते हुए किसी बस्तीमें पहुँच जाते, तब उन्हें पहचान कर लोग अनायास कह उठते थे,—“हाय! विधाताका यह कैसा कठोर विधान है—कैसी विकट विडम्बना है। राजा नल, जो इस भरतखण्डके आधे भू-भागके अधीश्वर थे, इस दशाको प्राप्त हो रहे हैं, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या होगी? निर्दयी दैव! इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने इनकी ऐसी दशा कर दी? यदि यही हालत करनी थी, तो फिर पहले इतना ऐश्वर्य इन्हें क्यों दिया था? पहले सम्पत्तिके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़ाकर, पीछे विपत्तिकी गहरी खाईमें डाल देना यह तुम्हारा घोर अन्याय है। आपके भयसे जिस रानी दमयन्तीको सूर्य भी स्पर्श नहीं करता था, वह बेचारी आज यह विकट रास्ता कैसे तै करती होगी? ओह! धिक्कार है कूबरको जिसने अपने भाई और भाभीको इस तरह वनवास दे दिया। उसका कभी भला न होगा। उससे भला कितने दिन राज्य चलाया जायेगा?”

इसी प्रकार दमयन्तीका सूखा हुआ चेहरा, थकी हुई देह और फटे-पुराने वस्त्र देखकर पुर-नारियाँ कह उठती थीं,—“हाय! हाय!! रानी दमयन्तीका यह हाल! शोक!! जब राजा नल जैसे प्रतापी पुरुषकी स्त्रीकी ऐसी दुर्दशा हुई, तब अन्यान्य साधारण नारियोंकी क्या बात है? भला इस संसारमें

ऐसा कौन है, जो कभी विपत्तिमें न पड़ा हो? 'सबै दिन नाहिं बराबर जात'।"

इसी तरह जहाँ कहींके लोग उन्हें पहचान जाते, उनके मुँहसे हाहाकार, शोक और सहानुभूतिसे भरे हुए शब्द निकल ही पड़ते थे। कहीं-कहींके लोग तो धन, धान्य, हाथी, घोड़ा तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्रियाँ लिये हुए उनके सामने आते और वह भेंट स्वीकार कर भली भाँति किसी स्थानपर टिके रहनेकी सलाह देते थे, पर नल, उनकी यह भेंट स्वीकार कर लेनेको तैयार नहीं होते थे। वे कहने लगते,—"प्यारे भाइयो! पहले भले ही तुम मेरी प्रजा थे, पर अब मेरा तुम्हारा भाईचारेका नाता है, क्योंकि यह राज्य अब मेरे छोटे भाई कूबरका है। इसलिये अब मुझे तुम्हारी भेंट लेनेका कोई अधिकार नहीं है। आपकी इस भेंटसे मुझे यह मालूम कर बड़ा हर्ष हुआ, कि आपलोग मुझपर इतना प्रेम रखते हैं, पर मैं इस भेंटको किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता। इसके सिवा मैं क्षत्रिय हूँ—अपने भुज-बलसे उपार्जित वस्तुको ही अपने व्यवहारमें लाना मेरा धर्म है। इस समय यदि मैं आपकी ये चीज़ें ले लूँगा, तो यह भिक्षा ही कहलायेगी, इसलिये मैं इन्हें सादर वापिस किये देता हूँ—आपलोग मुझे क्षमा करेंगे।"

इसी प्रकार सबको मीठे-मीठे वचनोंसे सन्तुष्ट कर वे आगे चल देते थे। बेचारे पुरजन, उनकी बातें सुन, निरुत्तर हो,

विपत्ति देख, मनुष्योंको तो बात ही क्या है, पशु-पक्षियोंके भी कलेजे फटने लगते थे। जब कभी वे लोग घूमते-फिरते हुए किसी बस्तीमें पहुँच जाते, तब उन्हें पहचान कर लोग अनायास कह उठते थे,—"हाय! विधाताका यह कैसा कठोर विधान है—कैसी विकट विडम्बना है। राजा नल, जो इस भरतखण्डके आधे भू-भागके अधीश्वर थे, इस दशाको प्राप्त हो रहे हैं, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या होगी? निर्दयी दैव! इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने इनकी ऐसी दशा कर दी? यदि यही हालत करनी थी, तो फिर पहले इतना ऐश्वर्य इन्हें क्यों दिया था? पहले सम्पत्तिके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़ाकर, पीछे विपत्तिकी गहरी खाईमें डाल देना यह तुम्हारा घोर अन्याय है। आपके भयसे जिस रानी दमयन्तीको सूर्य भी स्पर्श नहीं करता था, वह बेचारी आज यह विकट रास्ता कैसे तै करती होगी? ओह!! धिक्कार है कूबरको जिसने अपने भाई और भाभीको इस तरह बनवास दे दिया। उसका कभी भला न होगा। उससे भला कितने दिन राज्य चलाया जायेगा?"

इसी प्रकार दमयन्तीका सूखा हुआ चेहरा, थकी हुई देह और फटे-पुराने वस्त्र देखकर पुर-नारियाँ कह उठती थीं,—"हाय! हाय!! रानी दमयन्तीका यह हाल! शोक!! जब राजा नल जैसे प्रतापी पुरुषकी स्त्रीकी ऐसी दुर्दशा हुई, तब अन्यान्य साधारण नारियोंकी क्या बात है? भला इस संसारमें

ऐसा कौन है, जो कभी विपत्तिमें न पड़ा हो ? 'सबै दिन नाहिं बराबर जात'।"

इसी तरह जहाँ कहींके लोग उन्हें पहचान जाते, उनके मुँहसे हाहाकार, शोक और सहानुभूतिसे भरे हुए शब्द निकल ही पड़ते थे। कहीं-कहींके लोग तो धन, धान्य, हाथी, घोड़ा तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्रियाँ लिये हुए उनके सामने आते और वह भेंट स्वीकार कर भली भाँति किसी स्थानपर टिके रहनेकी सलाह देते थे, पर नल, उनकी यह भेंट स्वीकार कर लेनेको तैयार नहीं होते थे। वे कहने लगते,—"प्यारे भाइयो! पहले भले ही तुम मेरी प्रजा थे, पर अब मेरा तुम्हारा भाईचारेका नाता है, क्योंकि यह राज्य अब मेरे छोटे भाई कूबरका है। इसलिये अब मुझे तुम्हारी भेंट लेनेका कोई अधिकार नहीं है। आपकी इस भेंटसे मुझे यह मालूम कर बड़ा हर्ष हुआ, कि आपलोग मुझपर इतना प्रेम रखते हैं, पर मैं इस भेंटको किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता। इसके सिवा मैं क्षत्रिय हूँ—अपने भुज-बलसे उपार्जित वस्तुको ही अपने व्यवहारमें लाना मेरा धर्म है। इस समय यदि मैं आपकी ये चीज़ें ले लूँगा, तो यह भिक्षा ही कहलायेगी, इसलिये मैं इन्हें सादर वापिस किये देता हूँ—आपलोग मुझे क्षमा करेंगे।"

इसी प्रकार सबको मीठे-मीठे वचनोंसे सन्तुष्ट कर वे आगे चल देते थे। बेचारे पुरजन, उनकी बातें सुन, निरुत्तर हो

शोक भूल गये हैं। तभी तो वे ऐसे उत्साहके साथ पैर बढ़ाते हुए चले जा रहे है, मानों उनके आगे-आगे चतुरङ्गिणी सेना चल रही हो। सच है, जो बल पतिव्रता नारीमें है, वह लाखों चतुरङ्गिणी सेनाओंमें भी नहीं हो सकता। जब उनके आगे-आगे स्वयं लक्ष्मी स्वरूपिणी दमयन्ती चल रही है, तब उन्हें रोग, शोक, चिन्ता, दुःख और कष्ट क्यों व्यापने लगे? स्त्रियोंको स्वामीकी विपद्में कैसा बर्त्ताव करना चाहिये इसका उदाहरण रानी दमयन्तीने अपने अनुकरणीय चरित्रसे भली भाँति प्रकट कर दिखाया है।"

इसी प्रकार जहाँ-जहाँसे होकर वे दोनों जाने लगते, वहाँ वहाँके लोग उनके दुःखमें सहानुभूति प्रकट करते हुए इसी तरहके उदार विचार प्रकट करने लगते थे। इसी तरह चलते-चलते वे लोग एक घने जङ्गलमें पहुँच गये। उस समय थकी हुई दमयंतीके मुखड़े पर पसीनेकी बूँदें मोतीकी तरह चमकने लगीं। यह देख, नलने सरल भावसे अपने वस्त्रसे उसका पसीना पोंछ दिया इसी तरह चलते-चलते वह एक जगह थकावट और प्याससे व्याकुल होकर बैठ रही। तब राजा नल पासके ही एक जलाशयसे पत्तोंकी दोनी बनाकर, उसमें जल भर लाये और दमयंतीको हाथ-मुँह धोकर जल



"नाथ! आप मेरे गुरु, पूज्य और स्वामी हैं। आप ऐसा काम कदापि न करें। कहाँ तो मुझे आपकी सेवा करनी चाहिये, कहाँ आप ही मेरी सेवा करनेके लिये तैयार है? आप मेरी सेवा करेंगे, इससे मुझे बड़ा पाप लगेगा।" दमयंतीकी इन विनय भरी बातोंको सुनकर नल मन मारे रह गये और दोनों पति-पत्नि ने थोड़ी देर वहीं विश्राम किया। इसी तरह जब कभी दमयन्तीको भूख लग आती, तब वे वनमें जाकर उत्तम और स्वादिष्ट फल, ढूँढकर ले आते और दमयन्तीको खिलाते थे। इसी तरह उस वनमें उन्होंने नाना प्रकारके कष्ट उठाते हुए भी पास-पास रहनेके कारण किसी प्रकारका कष्ट नहीं अनुभव किया। क्रमशः सन्ध्याके बाद भयावनी रात्रि आ पहुँची। दोनों प्रिया-प्रियतमने वहीं पत्तोंकी शय्या पर शयन किया।

दूसरे दिन सवेरे ही उठकर वे फिर आगे बढे और उस वनको पार कर एक दूसरे वनमें घुसे। यह जङ्गल पहलेवाले जङ्गलसे कहीं अधिक घना और भयावना था। इसमें वृक्षोंकी ऐसी सघन श्रेणी थी, कि दिनको भी सूर्यकी किरणें उसमें नहीं घुसने पाती थीं। और बड़े विकराल विषधर सर्पोंका समूह फन फैलाये काट खानेको तैयार दिखलाई देता था इसी समय पूर्व दिशामें सूर्य उदय हो आया और प्रकाश दिखलाई देने लगा। उसी अल्प प्रकाशके … और दमयन्ती उस जङ्गलकी राह पार करने लगी।

प्राणेश्वर होकर भी उसे छोड़कर भाग जानेको तैयार हूँ। हा विधाता! तुम्हारा हृदय इतना कठोर है! तुम इतने निर्दय हो? सच पूछो, तो तुम पूरे जड़ हो। तुम्हारे हृदयमें दया, माया, प्रेम और सहानुभूतिका लेशमात्र भी नहीं है।"

इस प्रकार विधाताको दोष देकर नलने वनदेवताओंको सम्बोधन कर कहा,—"हे वनदेवो! मेरी एक विनती सुनो। विधाता तो निष्ठुर हो ही रहे हैं, पर तुम लोग भी उन्हींकी तरह निर्दय न हो जाना—मेरी प्राणप्यारी दमयन्ती पर दया करना। सदा ऐसी ही चेष्टा करना, जिससे दमयन्तीको दुःख न होने पाये। जब यह सवेरे सोकर उठे, तो इसे घरका रास्ता बतला देना, जिसमें यह व्यर्थ ही इधर-उधर न भटकतीफिरे।"

यह कहते हुए राजा नल उठ खड़े हुए और फिर-फिर कर पीछेकी ओर देखते हुए आगे निकल चले। थोड़ी ही देरमें वे उस जङ्गलके बाहर हो गये; पर तुरत ही उनके जीमें कुछ खुटका हुआ और वे फिर लौट आये। उन्होंने सोचा,—"मैं तो उसे छोड़कर चला जा रहा हूँ, पर इस जङ्गलमें बड़े भयानक जीवहिंसक जन्तु रहते हैं। वे दमयन्तीको जान ले लें, तो इसमें आश्चर्य नहीं। इसलिये उसे इस तरह रातमें अकेली छोड़कर जाना ठीक नहीं। जब तक वह सोयी रहे, तब तक मुझे किसी लता-कुञ्जमें छिपकर बैठ रहना चाहिये और उसकी हिंसक जीव-जन्तुओंसे रक्षा करनी चाहिये। इसके बाद जब प्रातःकाल यह सोकर उठेगी, तब जिस रास्ते जाना चाहे, चली जायेगी।



यह कहते हुए राजा नल उठ खड़े हुए और फिर-फिर कर पीछे की ओर देखते हुए आगे निकल गये। (पृष्ठ ३४)



यही सोचकर राजा नल एक लता-कुंजमें आकर बैठ गये। इसी समय दमयन्तीको देखकर फिर उन्होंने सोचा,—"ओह! महान् आश्चर्य है! मेरे जिस अन्तःपुरमें सूर्यकी भी पहुंच नहीं थी, वहां अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग बिता देनेवाली दमयन्तीको इस प्रकार वनमें अकेली छोड़कर भागजानेकी इच्छा करनेवाला पापी नल अब तक इस महापापकी अग्निमें जलकर भस्म क्यों नहीं हुआ?"

इसी तरह दमयन्तीको देख-देख कर नलके मनमें नाना प्रकारके विचार उठते रहे। इसी तरह सोच विचारमें उन्होंने सारी रात जागते ही बिता दी। क्रमशः रात बीत गयी, सवेरा हुआ। पूर्व दिशामें सूर्य निकल आया। पृथ्वीका वह सघन अन्धकार दूर हो गया, परन्तु नलके हृदयमें न ज्ञान-सूर्यका उदय हुआ, न उनका अज्ञानान्धकार ही मिटा। मानों सूर्योदयके भयसे सब स्थानोंसे भाग कर उनके हृदयमें ही अन्धकारने अड्डा जमा लिया। वे दमयन्तीको वहीं सोयी हुई छोड़कर एक ओर चल दिये। बेचारी दमयन्ती अपने प्राणाधारसे बिछुड़ गयी और 'सोया सो खोया' वाली कहावतके अनुसार उसने सोकर अपना सबसे बड़ा अमूल्य रत्न खो दिया।

उस समय तक दमयन्ती घोर निद्रामें पड़ी सो रही थी। उसे सूर्योदय होनेका कुछ भी ज्ञान नहीं था।

चौथा परिच्छेद

नलका गुप्त-वास

दमयन्तीको छोड़कर आगे जानेपर नलको एक ओर बड़ा भारी जङ्गल मिला। उस जंगलमें एक बड़ा ऊँचा पर्वत भी था। उस पर्वतके वृक्षोंमें दावाग्नि लगी हुई थी, जिसकी ज्वाला चारों ओर फैल रही थी। देखते-ही-देखते सारा जङ्गल दावाग्निसे धधक उठा। जीव-जन्तु जल-जलकर मरने लगे। उनके प्राण विदीर्ण करनेवाले हाहाकार और क्रन्दन-स्वरको सुनकर नलकी छाती फटने लगी। इसी समय उनके कानोंमें मनुष्यकी सी आवाज़ सुनाई दी। यह सुनते ही वे उस शब्दकी सीधपर लपके हुए चले गये। पहले तो वे निश्चय नहीं कर सके, कि यह आवाज़ कहाँसे आ रही है, पर पीछे जब उन्होंने चुपचाप खड़े हो, कान लगाकर सुना, तो फिर उसी आवाज़में यह कातर-ध्वनि पुनः सुनाई दी,—"हे इक्ष्वाकु-कुलके भूषण राजा नल! तुम इस संसारके दीन-दुःखियोंके रक्षक हो—दीन-बन्धु कहलाते हो। मैं इस दावाग्निमें जला जा रहा हूँ—मुझे कृपा करके बचाओ—मेरी

अभीसे ससारसे विरक्त हो जानेका नाम न लो। जब तुम्हारे व्रत अङ्गीकार करनेका समय आ जायेगा, तब मैं स्वयं आकर तुमसे कह जाऊँगा। मैं तुम्हें यह श्रीफल और यह सन्दूकची दिये जाता हूँ। इन दोनों चीज़ोंकी सदा—सब तरहसे—रक्षा करना। जब तुम्हें अपना पूर्वरूप धारण करनेकी इच्छा हो, तब इस श्रीफलको तोड़कर इसमेंसे जो दिव्य वस्त्र निकलें, उन्हें पहन लेना। बस तुम पहलेकेसे हो जाओगे। फिर इस सन्दूकचीमेंसे हार, मोती, अँगूठी आदि उत्तमोत्तम अलङ्कार निकाल कर पहन लेना।” यह कह, वे दोनों चीज़ें नलके हवाले करते हुए उन्होंने फिर कहा,—“बेटा! तुम व्यर्थ जङ्गल-में क्यों भटक रहे हो? तुम जहाँ कहो, वहीं मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा।”

यह सुन, नलने उनसे सुसमारपुर जानेकी इच्छा प्रकट की। बस उसी समय उस दिव्य पुरुषने उन्हें उस नगरके फाटकपर लाकर उतार दिया। ज्योंही राजाने नगरकी ओर मुँह फेरा, त्योंही नगरके भीतरसे बहुत बड़े कोलाहलकी ध्वनि सुनाई दी। मानों सैकड़ों हज़ारों लोग एकही साथ “दौड़ो-दौड़ो—भागो-भागो” की आवाज़ लगा रहे हों और सारे नगरमें भगदड़ मची हो, ऐसा मालूम पड़ा। इतनेमें हाथी-घोड़ों और बहुतसे मनुष्योंके दौड़धूप करनेकी आवाज़ भी कानोंमें पड़ी। यह सब सुनकर नलने सोचा,—“आई! यह है? लोग भागो-भागो और दौड़ो-दौड़ोकी पुकार

तेरी जातिका सहज स्वभाव है, कि जो तुम्हें दूध पिलाता है, उसे ही तुम लोग काट खाते हो।" यह कहते ही कहते उस भयङ्कर विषधरके विषके प्रभावसे राजा नल कोल-भीलोंकी तरह एकदम काले हो गये और खींचे हुए धनुषकी तरह झुक गये उनकी पीठ पर कूबड़ निकल आया। अपने शरीरकी ऐसी हालत हुई देख, नलको अपने जीवनसे ही वैराग्य हो गया और उन्होंने सब कुछ छोड़कर धर्म करनेकी ही मनमें ठान ली। इसी समय जिस नागने उन्हें डँसा था, उसने अपना नाग-रूप त्यागकर, दिव्य मूर्त्ति धारण कर लिया और नलके सामने आकर कहा,—"बेटा नल! तुम अपने मनमें किस लिये दुःख पा रहे हो? सर्पने तुम्हारी जैसी भलाई की है, वैसी और कौन कर सकता है? मैं तुम्हारा पिता निषध हूँ। पूर्व जन्ममें व्रत अङ्गीकार कर, दुष्कर तप करते हुए, अन्तमें अनशन ग्रहण कर मैं ब्रह्म नामक पाँचवें देवलोकमें जाकर देवता हो गया। वहाँ अवधिज्ञानसे तुम्हारे जुएके दुर्व्यसनका हाल जानकर मैं नागका रूप धारणकर यहाँ आया हुआ था। अभी तुमने जो कुछ चमत्कार देखा है, वह सब मेरी मायाके प्रभावसे ही उत्पन्न हुआ था। तुम यह कदापि नहीं सोचना, कि मैंने तुम्हारा पिता होते हुए भी तुम्हें ऐसा कुरूप क्यों बना दिया। इस बदले हुए-रूपमें तुम्हें कोई न पहचान सकेगा और तुम्हें शत्रुओंका ज़रा भी भय न रहेगा। अभी तुम्हें इस संसारके बहुत कुछ सुख भोगने बाकी हैं, इसलिये तुम

अभीसे संसारसे विरक्त हो जानेका नाम न लो। जब तुम्हारे व्रत अङ्गीकार करनेका समय आ जायेगा, तब मैं स्वयं आकर तुमसे कह जाऊँगा। मैं तुम्हें यह श्रीफल और यह सन्दूकची दिये जाता हूँ। इन दोनों चीज़ोंकी सदा—सब तरहसे—रक्षा करना। जब तुम्हें अपना पूर्वरूप धारण करनेकी इच्छा हो, तब इस श्रीफलको तोड़कर इसमेंसे जो दिव्य वस्त्र निकलें, उन्हें पहन लेना। बस तुम पहलेकेसे हो जाओगे। फिर इस सन्दूकचीमेंसे हार, मोती, अँगूठी आदि उत्तमोत्तम अलङ्कार निकाल कर पहन लेना।" यह कह, वे दोनों चीज़ें नलके हवाले करते हुए उन्होंने फिर कहा,—"बेटा! तुम व्यर्थ जङ्गलमें क्यों भटक रहे हो? तुम जहाँ कहो, वहीं मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा।"

यह सुन, नलने उनसे सुसमारपुर जानेकी इच्छा प्रकट की। बस उसी समय उस दिव्य पुरुषने उन्हें उस नगरके फाटकपर लाकर उतार दिया। ज्योंही राजाने नगरकी ओर मुँह फेरा, त्योंही नगरके भीतरसे बहुत बड़े कोलाहलकी ध्वनि सुनाई दी। मानों सैकड़ों हज़ारों लोग एकही साथ "दौड़ो-दौड़ो-भागो-भागो" की आवाज़ लगा रहे हों और सारे नगरमें भगदड़ मची हो, ऐसा मालूम पड़ा। इतनेमें हाथी-घोड़ों और बहुतसे मनुष्योंके दौड़धूप करनेकी आवाज़ भी कानोंमें पड़ी। यह सब सुनकर नलने सोचा,—"भाई! यह मामला क्या है? लोग भागो-भागो और दौड़ो-दौड़ोकी पुकार

क्यों मचा रहे हैं ? इस नगरमें इस समय कौनसा उपद्रव जारी है ?"

वे ऐसा सोच ही रहे थे, कि इसी समय पर्वतके समान ऊँचा हाथी, साक्षात् क्रोधकी सी मूर्त्ति बनाये, दोनों कनपट्टियोंसे मद गिराता, झूमता-झामता हुआ आता दिखाई दिया। उस हाथीका वेग पवनकी तरह किसीके रोके नहीं रुकता था। रास्तेमें जो मठ, मन्दिर, मकान, खेत, बाग और बगीचे आदि मिलते थे, उन्हें वह अपने पर्वतकेसे भारी शरीरकी टक्करसे ढोता चलता था। लोग पीछेसे उसे भाले बर्छियोंसे गोदते, पीलवान् बड़े-बड़े अङ्कुश लेकर उसके शरीरमें गोद देते, पर वह किसीके रोकनेसे रुकनेवाला नहीं था। वह सबको दूर भगाता हुआ अपनी इच्छाके अनुसार आगे बढ़ता चला जाता था। इसी समय नलने उस हाथीके पीछे-पीछे आते हुए राजा दधिपर्णको देखा। हाथीको इस तरह मतवाला होकर नगरका ध्वंस करते देख, राजा दधिपर्णने हाथ उठाकर ऊँचे स्वरसे कहा,—"भाइयो! जो कोई इस मतवाले हाथीका मद उतार कर वशमें ले आयेगा, उसे मैं अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दूँगा।" यह सुनते ही राजा नल उसे पकड़नेके लिये बड़े ज़ोरसे दौड़े। यह देख, सब लोग बड़े ज़ोर-ज़ोरसे कहने लगे,—"अरे ओ कूबड़े! तू कहाँ चला जा रहा है? भाग, जल्दी भाग—कहीं तू पागल तो नहीं हो गया है?" यह कह, लोगोंने उन्हें ऐसा दुस्साहसिक कर्म करनेसे भी

हाथीपर पंजा मारनेके लिये दौड़ पड़ता है, वैसेही राजा नल भी उस हाथीपर चढ़ दौड़े। सबसे पहले उन्होंने लाठी तान कर उस हाथीसे कहा,—"अरे! क्या तू पागल हो गया है? इस तरह स्त्रियों और बच्चोंको दुःख देनेसे तुझे क्या लाभ होगा? ज़रा मेरे सामने तो आ, मैं तेरे स्वागत-सत्कारके लिये खड़ा हूँ।"

यह सुनते ही वह हाथी नलपर टूट पड़ा। यह देखते ही नलने एक पत्थर उठाकर ज़ोरसे उस हाथीकी सूँड़पर दे मारा। इसके बाद कभी इधर, कभी उधर, कभी सामने, कभी बाँके-तिर्छे घुमाते हुए उन्होंने उस हाथीको खूब हैरान किया। कभी-कभी तो लोगोंको यह आशङ्का होने लगती थी, कि अबके उस हाथीने नलको धर दबाया, पर जब उन्होंने देखा, कि राजा नल हर बार उस हाथीको धोखा देकर साफ़ बचकर निकल जाते हैं, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार घंटों-की दौड़-धूपके मारे हाथी हैरान हो गया और घबराया हुआ इधर-उधर भागने लगा। नलने एक बार अपना वस्त्र उस हाथीकी ओर फेंका, पर ज्योंही वह हाथी उस वस्त्रको पकड़-नेके लिये लपका, त्योंही नलने उसे अपनी ओर खींच लिया। दूसरी बार वे ज़मीनपर लम्बे पड़ गये, पर ज्योंही हाथीने उन्हें सूँड़से उठाकर उछाल फेंकना चाहा, त्योंही वे उठकर भागे और हाथी उनके पीछे-पीछे दौड़ते-दौड़ते हैरान हो गया, पर वे उसके फन्देमें न आये। तीसरी बार फिर नलने अपना वस्त्र हाथीकी ओर फेंका और उसने ज्योंही अपनी सूँड़ उसे

क्यों मचा रहे हैं ? इस नगरमें इस समय कौनसा उपद्र
आरी है ?"

वे ऐसा सोच ही रहे थे, कि इसी समय पर्वतके समान ऊँच
हाथी, साक्षात् क्रोधकी सी मूर्त्ति बनाये, दोनों कनपटियों
मद गिराता, झूमता-झामता हुआ आता दिखाई दिया। उ
हाथीका वेग पवनकी तरह किसीके रोके नहीं रुकता था
रास्तेमें जो मठ, मन्दिर, मकान, खेत, बाग और बगीचे आ
मिलते थे, उन्हें वह अपने पर्वतकेसे भारी शरीरकी टक्कर
ढोता चलता था। लोग पीछेसे उसे भाले बर्छियोंसे गोद
पीलवान् बड़े-बड़े अङ्कुश लेकर उसके शरीरमें गोद देते, प
वह किसीके रोकनेसे रुकनेवाला नहीं था। वह सबको द
भगाता हुआ अपनी इच्छाके अनुसार आगे बढ़ता चला जात
था। इसी समय नलने उस हाथीके पीछे-पीछे आते हुए राज
दधिपर्णको देखा। हाथीको इस तरह मतवाला होकर नग
का ध्वंस करते देख, राजा दधिपर्णने हाथ उठाकर ऊँचे स्वर
कहा,—"भाइयो ! जो कोई इस मतवाले हाथीका मद उता
कर वशमें ले आयेगा, उसे मैं अपनी समस्त सम्पत्ति दान क
दूँगा।" यह सुनते ही राजा नल उसे पकड़नेके लिये बड़े ज़ोर
दौड़े। यह देख, सब लोग बड़े ज़ोर-ज़ोरसे कहने लगे,—
"अरे ओ कुबड़े ! तू कहाँ चला जा रहा है ? भाग, जल्द
भाग—कहीं तू पागल तो नहीं हो गया है ?" यह कह, लोगोंने
उन्हें ऐसा दुस्साहसिक कर्म करनेसे रोका, तो भी जैसे सिंह

हाथीपर पंजा मारनेके लिये दौड़ पड़ता है, वैसेही राजा नल भी उस हाथीपर चढ़ दौड़े। सबसे पहले उन्होंने लाठी तान कर उस हाथीसे कहा,—"अरे! क्या तू पागल हो गया है? इस तरह स्त्रियों और बच्चोंको दुःख देनेसे तुझे क्या लाभ होगा? ज़रा मेरे सामने तो आ, मैं तेरे स्वागत-सत्कारके लिये खड़ा हूँ।"

यह सुनते ही वह हाथी नलपर टूट पड़ा। यह देखते ही नलने एक पत्थर उठाकर ज़ोरसे उस हाथीकी सूँड़पर दे मारा। इसके बाद कभी इधर, कभी उधर, कभी सामने, कभी बाँके-तिरछे घुमाते हुए उन्होंने उस हाथीको खूब हैरान किया। कभी-कभी तो लोगोंको यह आशङ्का होने लगती थी, कि अबके उस हाथीने नलको धर दबाया, पर जब उन्होंने देखा, कि राजा नल हर बार उस हाथीको धोखा देकर साफ़ बचकर निकल जाते हैं, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार घंटों-की दौड़-धूपके मारे हाथी हैरान हो गया और घबराया हुआ इधर-उधर भागने लगा। नलने एक बार अपना वस्त्र उस हाथीकी ओर फेंका, पर ज्योंही वह हाथी उस वस्त्रको पकड़नेके लिये लपका, त्योंही नलने उसे अपनी ओर खींच लिया। दूसरी बार वे ज़मीनपर लम्बे पड़ गये, पर ज्योंही हाथीने उन्हें सूँड़से उठाकर तत्काल फेंकना चाहा, त्योंही वे उठकर
भागे और हाथी उनके पीछे-पीछे दौड़ते-दौड़ते [illegible] गया,
पर वे उसके फन्देमें न आये। तीसरी बार फिर [illegible]
वस्त्र हाथीकी ओर फेंका और उसने ज्योंही

पकड़नेके लिये बढ़ायी, त्योंही वे उछलकर उसकी गरदन पर सवार हो गये। इसी समय पीछेसे आकर राजाके नौकरोंने उनके हाथमें अंकुश और बन्धन पकड़ा दिये। अङ्कुशकी लगातार मारसे नलने उस थके हुए हाथीको और भी हैरान कर डाला और उसके पैरोंमें बन्धन डाल दिया। नलकी यह वीरता और चतुरता देख, लोग अचम्भेमें आ गये और परस्पर कहने लगे,—"यह कूबड़ा तो कोई मायावी देवता मालूम पड़ता है। इसने इस मतवाले हाथीको देखते-देखते अपने वशमें कर लिया।"

तदनन्तर उसी हाथीपर बैठे हुए राजा नल राजमहलके पास आ पहुँचे। उन्हें इस प्रकार उस हाथीको बकरेकी तरह वशमें लाते देख, प्रसन्न होकर खिड़की पर बैठे हुए राजाने एक उत्तमोत्तम रत्नोंकी माला उनके गलेमें पहना दी। यह देख, सब प्रजावर्ग उन्हें धन्यवाद देने लगे और वाह-वाह करते नलके विजय-गर्वको सौगुना बढ़ाने लगे। इसके बाद उन्होंने उस हाथीको पीलखानेमें लाकर बाँध दिया और तब राजा दधिपर्णसे मिलनेके लिये राजदरबारमें आये। उस समय राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें उत्तमोत्तम वस्त्रालङ्कार इनाममें दिये और उनका पूर्ण आदर-सत्कार करते हुए उन्हें सदाके लिये अपने पास रख लिया।

दूसरे दिन, राजदरबारमें सब दरबारियोंके साथ-साथ वह कूबड़ा भी आकर बैठ रहा। उस समय राजा दधिपर्णने

उससे कहा,—"भाई! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी जन्मभूमि कहाँ है? तुम्हारे भाई-बंधु कहाँ हैं और उनके नाम क्या हैं? मैं तुम्हारी गज-विद्या देखकर चकित हो गया हूँ। क्या तुम इसके सिवा और कोई विद्या भी जानते हो?"

यह सुन, कूबड़ेने कहा,—"महाराज! मेरी जन्मभूमि कोशलापुरीमें है। मेरे परिवारके सब लोग वहीं रहते हैं। मैं राजा नलका रसोइया हूँ। राजाने मुझे योग्य पात्र जानकर यह सब विद्याएँ मुझे सिखला दी थीं। राजा नल पाक-शास्त्रमें परम प्रवीण हैं। मैं भी उन्हींकी कृपासे सब तरहके उत्तम पाक बनाना सीख गया हूँ। हम दोनोंके समान पाक-शास्त्रमें निपुण मनुष्य इस संसारमें तीसरा नहीं है। राजा नल, अपने भाई कूबरके साथ जुआ खेलनेमें अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे और अपनी स्त्रीको साथ लिये हुए वनमें चले गये। शायद वे मर गये हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। नलके जङ्गलमें चले जाने और कूबरको किसी कलामें प्रवीण न होनेके कारण मैंने उसका आश्रय छोड़ दिया और घूमता-फिरता यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

नल राजाके मरनेकी बात कूबड़ेके मुँहसे सुनकर राजा दधिपर्णको बड़ा शोक हुआ। वे रोने लगे। इसके बाद उन्होंने शास्त्र-विधिके अनुसार राजा नलकी समस्त प्रेत-क्रियाएँ कीं।

होनेके बाद दमयन्तीका क्या हाल हुआ, यह मैं नहीं जानता। इसलिये कृपाकर मुझे वह सब समाचार सुना दो।"

यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,—"हे कूबड़! सुनो। जब राजा नल दमयन्तीको छोड़कर चले गये, तब सवेरा हो चुका था, पर उस समय तक दमयन्तीकी नींद नहीं टूटी थी। उसी समय दमयन्तीने सुपना देखा, कि वह फलके भारसे झुके हुए एक आमके पेड़पर फल तोड़कर खानेकी इच्छासे चढ़ी हुई है। उस पेड़पर मोर बैठे शोर कर रहे हैं और भौंरे मधुर स्वरसे गूँज रहे हैं। इतनेमें, अकस्मात् एक हाथी वहाँ आया और उस पेड़को जड़से उखाड़ डाला, जिससे वह ज़मीनपर गिर पड़ी! इसी समय दमयन्तीकी नींद खुल गयी और वह व्याकुल होकर चारों ओर चकित नेत्रोंसे देखने लगी। उसने देखा, कि उसके स्वामी उसे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये हैं। यह देख, उसने भय और घबराहटके साथ उन्हें चारों ओर ढूँढना शुरू किया, पर जब कहीं उनका पता न लगा, तब हारकर हथेली पर सिर रखे हुई शोकपूर्ण स्वरमें कहने लगी—हाय! आज दैव सोलहों आने मेरे प्रतिकूल हो गया। महा भयानक सर्प, शृगाल, सिंह, व्याघ्र, भालू और मतवाले हाथी आदि जानवरोंसे भरे हुए इस जङ्गलमें मेरे स्वामी मुझे अकेली छोड़कर चल दिये! नहीं, नहीं, वे कदापि मुझे छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते। वे अवश्य ही पासके किसी जलाशयमें हाथ-पैर या मुँह धोने गये होंगे, अथवा

"निर्घृणानामलज्जाना, निःसत्वानां दुरात्मना,
नलश्चैव धुरीणत्व, सुप्तां तत्याजयत्प्रियाम्॥ १॥
सुप्तामेकाकिनीं स्निग्धां, विश्वस्तां दयितां सतीम्।
गतः किं न वने त्यक्तु-काम एव स भस्मसात्॥२॥"

अर्थात्—"इस संसारमें जितने निर्दय, निर्लज्ज और हृदय-हीन दुष्टात्मा हैं, उन सबका नल शिरोमणि है; क्योंकि उसने अपनी सोयी हुई स्त्रीको अकेली छोड़ दिया था। हाय! जिस समय उस दुष्टने उस प्रेममयी, विश्वासमयी और सती स्त्रीको अकेली सोती छोड़ कर भागनेका विचारा, उसी समय वह जलकर ख़ाक क्यों नहीं हो गया?"

उस ब्राह्मणके मुँहसे ऐसी बात सुनकर नलकी आँखोंमें आँसू भर आये और उन्होंने गद्गद कण्ठसे उस ब्राह्मणसे कहा,—"ओह! कैसा आश्चर्य है। तुम्हारा स्वर तो बड़ा ही मधुर है और तुम्हारी बातोंसे करुणा टपकी पड़ती है, जिससे मेरी आँखोंमें आँसू भर आये हैं। तुम कृपाकर यह बतलाओ, कि तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? नलकी ऐसी दुर्बुद्धिकी बात तुमने कहाँ सुनी?"

बातें बनानेमें चतुर ब्राह्मणने कहा,—"मैं कुण्डिनपुरसे चला आ रहा हूँ। वहीं मैंने नलकी इस मूर्खताकी बात सुनी है।"

कुबड़ने कहा,—"दमयन्तीको छोड़कर राजा नलके भाग जाने तककी कथा तो मैं भी सुन चुका हूँ, पर पतिके वियोग

होनेके बाद दमयन्तीका क्या हाल हुआ, यह मैं नहीं जानता। इसलिये कृपाकर मुझे वह सब समाचार सुना दो।"

यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,—"हे कूबड़! सुनो। जब राजा नल दमयन्तीको छोड़कर चले गये, तब सवेरा हो चुका था, पर उस समय तक दमयन्तीकी नींद नहीं टूटी थी। उसी समय दमयन्तीने सुपना देखा, कि वह फलके भारसे झुके हुए एक आमके पेड़पर फल तोड़कर खानेकी इच्छासे चढ़ी हुई है। उस पेड़पर मोर बैठे शोर कर रहे हैं और भौंरे मधुर स्वरसे गूँज रहे हैं। इतनेमें अकस्मात् एक हाथी वहाँ आया और उस पेड़को जड़से उखाड़ डाला, जिससे, वह ज़मीनपर गिर पड़ी। इसी समय दमयन्तीकी नींद खुल गयी और वह व्याकुल होकर चारों ओर चकित नेत्रोंसे देखने लगी। उसने देखा, कि उसके स्वामी उसे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये हैं। यह देख, उसने भय और घबराहटके साथ उन्हें चारों ओर ढूँढना शुरू किया, पर जब कहीं उनका पता न लगा, तब हारकर हथेली पर सिर रखे हुई शोकपूर्ण स्वरमें कहने लगी—हाय! आज दैव सोलहो आने मेरे प्रतिकूल हो गया। महा भयानक सर्प, शृगाल, सिंह, व्याघ्र, भालू और मतवाले हाथी आदि जानवरोंसे भरे हुए इस जङ्गलमें मेरे स्वामी मुझे अकेली छोड़कर चल दिये। नहीं, नहीं, वे कदापि मुझे छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते। वे अवश्य ही पासके किसी जलाशयमें हाथ-पैर या मुँह धोने गये होंगे, अथवा

मेरे लिये जल लाने चले गये होंगे। हो सकता है, वहाँ किसी विद्याधरीने उन्हें बातोंमें फँसा रखा हो, अथवा मुझे छकानेके लिये दिल्लगीसे जान-बूझ कर देर कर रहे हों। खैर, उठकर देखूँ तो सही, कि वे कहाँ अटके हुए हैं। यही सोचकर वह फिर उठी और चारों दिशाओंमें उन्हें ढूँढने लगी, परन्तु उसे नल कहीं दिखाई न दिये। तब तो वह घोर निराशाके मारे ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगी। वह कहने लगी,—हा नाथ! हा स्वामिन्! हा राजन्! तुम कहाँ चले गये? जल्दी चले आओ। तुम्हारे वियोगमें मेरा हृदय टुकडे-टुकडे हुआ जाता है। बहुत दिल्लगी अच्छी नहीं होती। कहीं हँसी-ही-दिल्लगी-में मेरे प्राण न निकल जायें। तुम्हारी दिल्लगीमें मेरी मौत हो रही है। चिड़ियोंकी जान जाये और लड़कोंका तमाशा हो—इस कहावतको पूरा न करो। इस प्रकार नाना प्रकारके दीन वचनोंको कहती हुई, दमयन्ती चारों ओर रोती फिरी। अबके उसे अपने स्वप्नकी बात याद आयी। उसने सोचा, कि सचमुच मैं वृक्षसे ही नहीं, एकदम आसमानसे नीचे गिर पड़ी हूँ। मेरी यह विपत्ति आकाशसे पातालमें गिर पड़नेके ही समान है। अब मेरे प्राणपति इस जीवनमें मुझे नहीं मिलेंगे। यह बात मनमें आते ही दमयन्ती मूर्च्छित होकर भूमिमें गिर पड़ी। बड़ी देर बाद मूर्च्छा टूटने पर वह फिर हृदय-विदारक रोदन करने लगी। वह कहने लगी,—हे स्वामी! हे महाराज! मैं क्या ... बोझ



हा नाथ ! हा स्वामिन् ! हा राजन् ! तुम कहाँ चले गये !
जल्दी चले आओ। (पृष्ठ ४७)

मेरे लिये जल लाने चले गये होंगे। हो सकता है, वहीं किसी विद्याधरोंमें उन्हें बातोंमें फँसा रखा हो, अथवा मुझे छकानेके लिये दिल्लगीसे जान-बूझ कर देर कर रहे हों। खैर, उठकर देखूँ तो सही, कि वे कहाँ अटके हुए हैं। यही सोचकर वह फिर उठी और चारों दिशाओंमें उन्हें ढूँढने लगी, परन्तु उसे नल कहीं दिखाई न दिये। तब तो वह और निराशाके मारे ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगी। वह कहने लगी,—हा नाथ! हा स्वामिन्! हा राजन्! तुम कहाँ चले गये! जल्दी चले आओ। तुम्हारे वियोगमें मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है। बहुत दिल्लगी अच्छी नहीं होती। कहीं हँसी-ही-दिल्लगी-में मेरे प्राण न निकल जायें। तुम्हारी दिल्लगीमें मेरी मौत हो रखी है। चिड़ियोंकी जान जाये और लड़कोंका तमाशा हो—इस कहावतको पूरा न करो। इस प्रकार नाना प्रकारके दीन वचनोंको कहती हुई, दमयन्ती चारों ओर रोती फिरी। अबके उसे अपने स्वप्नकी बात याद आयी। उसने सोचा, कि सचमुच मैं वृक्षसे ही नहीं, एकदम आसमानसे नीचे गिर पड़ी हूँ। मेरी यह विपत्ति आकाशसे पातालमें गिर पड़नेके ही समान है। अब मेरे प्राणपति इस जीवनमें मुझे नहीं मिलेंगे। यह बात मनमें आते ही दमयन्ती मूर्च्छित होकर भूमिमें गिर पड़ी। बड़ी देर बाद मूर्च्छा टूटने पर वह फिर करुणापूर्ण स्वरमें हृदय-विदारक रोदन करने लगी। वह कहने लगी,—"हे नाथ! हे स्वामी! हे महाराज! मैं क्या तुम्हारे सिरपर बोझ लादे हुए

थी, जो तुम इस प्रकार घोर वनमें मुझे छोड़ गये—विवेकी पुरुषोंका यह काम नहीं है, कि पाँच भाइयोंके सामने जिसकी बाँह पकड़े, उसे यों जङ्गलमें भटकती छोड़ दे। हे निषधेश! मुझे इस तरह परित्याग कर देनेमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। सब अपराध मेरे खोटे भाग्यका है। जब मेरा दैव ही सब तरहसे मेरे प्रतिकूल है, तब तुम क्या करते? मेरा भाग्य खोटा नहीं होता, तो तुम्हारे मनमें ऐसी दुर्बुद्धि क्योंकर उत्पन्न होती? इसी तरह विलाप करती हुई दमयन्ती चारों ओर जङ्गलमें भटकने लगी। इसी समय उसकी दृष्टि वस्त्रपर खूनके अक्षरोंमें लिखे हुए राजा नलके पत्रपर पड़ी। उस लिखावटको पढ़कर दमयन्ती बड़ी प्रसन्न हुई। उसने सोचा, कि इस पत्रद्वारा मेरे स्वामीने मुझे पीहर या ससुराल चले जानेकी आज्ञा दी है। वह जो सामने बड़का पेड़ दिखाई देता है, उसीकी बगलसे मेरे पिताके यहाँ जानेका रास्ता गया है। बस अब मुझे पिताकेही यहाँ चला जाना उचित है, क्योंकि पति-विरहिणी स्त्रियोंको बापके ही घरमें रहना चाहिये। बिना पतिके ससुरालमें रहनेसे पद-पद पर तिरस्कार और लाञ्छना सहनी पड़ती है। यह सोचकर दमयन्तीने अपने पिताके नगर-की राह ली। बेचारी अकेली सुकुमार नारी उस जङ्गलमें चलती हुई पद-पद पर ठोकरें खाने लगी। रह-रहकर उसके पैरोंमें कुश-काँटे गड़ने लगे। उस बार पतिके साथ जङ्गलमें आते समय पतिका मुखचन्द्र देख-देख कर वह इन कष्टोंको

बात भी अपने मनमें नहीं आने देती थी। अबके ये कष्ट उसे रह-रह कर पतिको याद दिलाते हुए दुगुना दुःख देने लगे। उसके पैर काँटोंसे छिद गये उनसे लहू बहने लगा। सारे शरीर पर धूल छा गई। बिखरे हुए केश कन्धों पर भूलने लगे। इसी तरह वह चञ्चल-नयनी और पति-विरहिणी उर्मिला, जो किसी दिन राजराजेश्वरकी पत्नी थी, एक साधारण भिखारिनीकी भाँति जंगली रास्तेको तै करने लगी। उस सती नारीको देख, सिंह, व्याघ्र, भालू और सर्प आदि हिंसक जीव-जन्तु दूर भागने लगे।

पाँचवाँ परिच्छेद

सती-प्रताप

इतनी कथा सुनाकर वह ब्राह्मण सुस्तानेके लिये थोड़ी देर चुप हो रहा। उसकी यह चुप्पी नलको बेतरह खटकने लगी। उनका हृदय कौतूहलके मारे बल्लियों उछल रहा था और वे प्रत्येक क्षण यही सोच रहे थे, कि क्योंकर मैं शीघ्रातिशीघ्र इस ब्राह्मणके मुँहसे सारी कथा सुन लूँ। इसी लिये उसे चुप देख, उन्होंने बड़ी घबराहटके साथ कहा,—

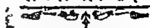
"हे विप्र! शीघ्र कहो, इस प्रकार नलको ढूँढ़ती और रोती बिलखती हुई दमयन्ती आखिरकार कहाँ जा पहुँची और उसे रास्तेमें किन-किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा?"

यह सुन, उस ब्राह्मणने फिर कहना आरम्भ किया,—"इस प्रकार उस जङ्गलमें अकेली भटकती हुई दमयन्तीने सोचा, कि यदि इस समय कोई साथी मिल जाये, तो मैं उसीके साथ-साथ इस गहन वनको पार कर अपने पिताके पास पहुँच जाऊँ। इसी समय उसने सामनेसे गाड़ी-घोड़ेके साथ बहुतसे आदमियोंको आते देखा। यह देख, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसी समय उस जन-समुदायमें डङ्का बजने लगा और लोग यह कह-कह कर चिल्लाने लगे, कि जो कोई चोर-डाकू यहाँ छिपा हो, वह भाग जाये, हम लोग यहाँ सैन्य-सहित आ पहुँचे हैं, पकड़े जानेपर फिर खैरियत नहीं होगी। पर इस धमकीकी ज़रा भी परवा न कर, जङ्गलोंमें फिरनेवाले डाकुओंने उस बन-समूह पर धावा बोल ही दिया। यह देख, दमयन्तीने उन्हें बड़े ज़ोरसे ललकारा। उसकी ललकार सुनते ही चोर वैसे ही भाग गये, जैसे सिंहनीका गर्जन सुन कर सारे मृग भाग खड़े होते हैं। यह अद्भुत कौतुक देख, उन बन-रक्षकोंने सोचा, कि यह तो हमारी कुलदेवी ही साक्षात् उतर पड़ी है, तभी तो इन्होंने हमारी इन चोर-डाकुओंसे इस प्रकार रक्षा की है। यही सोचकर वे लोग दमयन्तीके पास आकर उसे प्रणाम कर पूछने लगे,—"हे महिमामयी देवी! तुम कौन हो? और अकेली इस बनमें किसलिये घूम रही हो?" यह सुन, दमयन्तीने उन लोगोंको अपनी सारी रामकहानी सुना दी। एक तो दमयन्तीने तुरत ही उन लोगोंको चोर-डाकुओंसे बचाया था, दूसरे, उन्हें यह भी मालूम हो गया, कि वह राजा नलके से उदार नरपतिकी पत्नी है। इसीलिये वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे अपने डेरेमें ले गये और उसे बड़े आदरसे नहला-धुलाकर खिलाया-पिलाया। इसके सिवा, उसके आराम और जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता थी, उन्हें भी वे ले आये और दमयन्तीकी देवीकी तरह पूजा

करने लगे। सब लोगोंने उसे माता या बहनकी तरह मानते हुए बड़े आदरके साथ उसे अपने पास रखा।

इसी तरह दिन बीतते-बीतते वर्षा-ऋतु आ पहुँची। एक बार तीन दिनों तक लगातार दिन-रात मूसलधार पानी बरसता रहा। धीरे-धीरे सब रास्ते बन्द हो गये। पानी और कीचड़के मारे आदमियों का ही चलना मुश्किल हो गया, फिर घोड़े-गाड़ीकी तो बात ही क्या है? यह देख दमयन्तीने सोचा, कि अब तो ये लोग चौमासे भर यहीं रुके रहेंगे—इनके साथ रहकर मैं कदापि अपने पिताके घर न पहुँच सकूँगी। यही सोचकर वह एक दिन रातोंरात चुपचाप निकल भागी। जाते-जाते रास्तेमें एक जगह उसने काले पहाड़के समान विकट और भयावने, मेघ और बिजली-का तिरस्कार करनेवाले शरीर और आँखों वाले, मनुष्यकी हड्डियोंकी माला पहने हुए भयङ्कर राक्षसको विकराल मुँह बनाये खड़ा देखा। दमयन्ती को देखते ही उस राक्षसने कहा,—"अरी! तू कहाँ चली जा रही है? आ,मुझे बड़ी भूख लगी है। आज तुझे ही खाकर अपनी भूख बुझाऊँगा।" यह सुन, ज़रा भी घबराहटमें न पड़कर दमयन्तीने उस दैत्य से कहा,—"पहले तुम मेरी बातें सुन लो। इसके बाद जो तुम्हारे जीमें आये करना। मैं परब्रह्म परमात्माकी उपासना करने वाली हूँ—मुझे मरनेका कोई डर नहीं है। पर तुम ज़रा मेरी एक बात सुन लो। मेरा मन सदा पवित्र रहा है



और मैं निरन्तर पति-देवताके ही स्मरणमें रहती हूँ। इस-लिये तुम्हारी भलाई इसीमें है, कि तुम मुझे न छुओ। यदि तुम न मानोगे और जबरदस्ती मुझ सती पर-नारीका अङ्ग-स्पर्श करोगे, तो यहीं जल कर राख हो जाओगे।" यह सुनते ही उस राक्षसने कहा,—"देवी! मैं तुम्हारी बातें सुनकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, इसलिये बतलाओ, कि मैं तुम्हारी कौनसी भलाई करूँ?" राक्षसकी यह बात सुन, दमयन्तीने कहा,—"हे राक्षस! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो कृपाकर यह बतलाओ, कि मुझे फिर अपने प्यारे पतिदेवके दर्शन कब प्राप्त होंगे? यह सुनते ही अवधिज्ञानसे इस भविष्यकी बात-का विचार कर राक्षसने कहा,—"जिस दिन तुम्हारे पतिदेव तुम्हें छोड़कर गये हैं, उस दिनसे ठीक बारह वर्ष बाद तुम्हारे पिताके घर पर ही तुम्हारे पति तुमसे आ मिलेंगे। इसलिये यदि तुम कहो, तो मैं अभी तुम्हें तुम्हारे पिताके घर पहुँचा दूँ। पतिके फिर दर्शन प्राप्त होंगे—यह बात सुनकर दमयंतीके रोएँ-रोएँमें प्रसन्नता छा गयी। उसने कहा,—"भाई! तुम जैसे हितैषीके साथ पीहर जानेमें भला किसे आनन्द नहीं होगा? पर मैं तुम्हारे साथ वहाँ न जाकर किसी दूसरे आदमीके ही साथ चली जाऊँगी—तुम, जहाँ जी चाहे, आनन्दसे जाओ। परमात्मा तुम्हारा भला करे। तुम्हारी धर्ममें सदा मति बनी रहे। यह सुन, उस राक्षसने अपना दिव्य स्वरूप प्रकट कर दमयन्तीको दिखलाया और एक ओर को राह नापी।

अब तो दमयंतीको इस बातका पूरा निश्चय हो गया, कि बारह वर्ष बाद ही उसके स्वामी उससे आ मिलेंगे, इधर नहीं। इसलिये उसने रँगीले वस्त्र, ताम्बूल, नेत्राञ्जन, इतर-फुलेल आदि शृङ्गारकी वस्तुओंका बारह वर्षके लिये परित्याग कर दिया। इस प्रकारका व्रत धारण कर वह आगे चली। जाते-जाते वह सुन्दर स्वादिष्ट फलोंसे लदे हुए वृक्षोंसे शोभित एक मनोहर गुफाके पास आ पहुँची। बरसातके भयानक प्रकोपके मारे दमयन्तीने उसी गुफामें डेरा डाल दिया और शान्ति जिनेश्वरकी मिट्टीकी प्रतिमा बना, वृक्षों परसे आप-ही-आप चू पड़नेवाले फूलोंसे उसकी पूजा करनी आरंभ की। वह प्रति दिन इसी प्रकार पूजा और ध्यानमें अपना समय बिताने लगी। धर्म और ध्यान-रूपी अमृतके सागरमें मज्जन-रूपी स्नानकर आनन्दमें निमग्न रहनेवाली, चतुर्थादि तपका निरन्तर अनुष्ठान करनेवाली, वृक्षोंके फलोंका पारणा करनेवाली, एकान्तमें अपने पूर्व जन्मार्जित पापोंका स्मरण करनेवाली और पञ्चपरमेष्ठीके नमस्कार मन्त्रोंका निरन्तर उच्चारण करनेवाली दमयन्ती उसी गुफामें पड़ी-पड़ी समय बिताने लगी।

इधर वे वन-रक्षक दमयन्तीको चारों ओर खोज करने लगे, कि वह एकाएक कहाँ गुम हो गयी? उन्हें इस बातकी चिन्ता बेतरह सताने लगी, कि वह दुःखमें है, या सुखमें। इसीलिये वे जी-जानसे उसकी खोज करने लगे। खोजते-खोजते उस गुफाके पास पहुँचकर उन्होंने जब देखा, कि दमयन्ती

वहाँ बैठी हुई प्रतिमा-पूजन कर रही है, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे दमयन्तीके पास आ, उसे प्रणाम कर चुपचाप बैठ रहे। पूजा समाप्त होने पर दमयन्ती बड़े आदरके साथ उनसे बातें करने लगी। वनरक्षकोंने पूछा,—"देवी! तुम किस देवताकी पूजा कर रही हो?" दमयन्तीने कहा,—"मैं सोलहवें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिजिनकी * पूजा कर रही हूँ।" इस प्रकार बड़ी देर तक उन लोगोंमें वार्त्तालाप होता रहा। बातचीतकी आहट पाकर पासके आश्रममें रहनेवाले तापसगण वहाँ आ पहुँचे। तदनंतर दमयन्तीने वन-रक्षकोंको अहिंसा आदि धर्मोंका उपदेश दिया। उसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और दमयन्तीको अपना गुरु मानते हुए, अरहंत धर्म अङ्गीकारकर अपने-अपने घर चले गये। जाते-जाते वन-रक्षकोंके सरदारने कहा,—"हे कल्याणी! पहले मेरा नाम वसंत था। आज धर्मकी सुगन्ध द्वारा तुमने मेरा वह नाम सार्थक कर दिया।"

इसी समय आकाशमें मेघ गर्जन करने लगे। चारों दिशाओंमें चञ्चल चपला चमकने लगी और मूसलधार पानी बरसने लगा। उस विकट वर्षाके कारण वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंको वहाँ रहनेमें बड़ा कष्ट होने लगा। वे इसी घबराहट में पड़ गये, कि अब हम कहाँ जायें और क्या करें। ऋषियोंको

* हमारे यहाँसे श्री शान्ति-नाथ चरित्र मँगाकर सरल, सुन्दर और सरस हिन्दीभाषामें सोलहवें तीर्थंकरके समस्त जन्मोंकी कथा पढ़कर ज्ञान और धर्मका लाभ उठाइये।

यह व्याकुलता देख, दमयंतीने कहा,—"हे तपस्वियो! ज़रा भी न घबराओ।" यह कह, उसने एक लकड़ी उठाकर एक कुण्डकी ओर इशारा करते हुए कहा,—'यदि मैं सती होऊँ और कपट रहित होकर भक्तिके साथ अरहंतकी पूजा करती होऊँ, तो वृष्टिका सारा जल उसी कुण्डमें पड़े।' सतीका वचन सत्य निकला। सचमुच सब स्थानोंसे हटकर मेघ उसी कुण्डमें पानी बरसाने लगे। दमयंतीकी यह महिमा देख, सारे तपस्वी अपने मनमें सोचने लगे,—"यह तो अद्भुत शक्तिशालिनी वन-देवी मालूम पड़ती है।" साथही वृष्टिकी प्रबलताको सतीके वचन सुनतेही कम हो जाते देखकर वे अपने धर्मकी प्रबलताकी निन्दा करने लगे और दमयंतीके बतलाये अनुसार ही धर्मका आचरण करनेको तत्पर हुए। वन-रक्षकोंने उसी स्थान पर एक नगर बसाया और वहाँ जिन-चैत्य तैयार करवा कर उसमें श्रीशांतिनाथकी मूर्त्ति स्थापित की। धर्मका खूब प्रचार हो गया। लोग मन लगाकर भक्ति पूर्वक जिनेश्वरकी पूजा करने लगे। इसके प्रभावसे वहाँ रहने वाले पाँच सौ तपस्वियोंको सम्यक्दृष्टि प्राप्त हुई। उसी समयसे उस नये नगरका नाम तापसपुर पड़ गया। इधर-उधरके हज़ारों आदमी वहाँ आकर बस गये। थोड़ेही दिनोंमें उस नगरमें नीच-ऊँच सभी श्रेणीके लोग भर गये। वह नगर सब तरहकी समृद्धियोंसे भरपूर हो गया। सब लोग अरहत-भाषित धर्मका पालन करने लगे।

एक दिनकी बात है, कि आधी रातके समय पर्वतके शिखर

पर सूर्यकी ज्योतिको भी लज्जित करनेवाली एक ज्योति दमयंती ने प्रकट होती देखी। सुरासुर आदि गगन-गामी देव, उस ज्योतिको देख आश्चर्यमें आकर आकाशमें उड़ते दिखाई देने लगे। उन लोगोंके कोलाहलसे तापसपुरकी सारी प्रजा जग पड़ी और उस ज्योतिको देख कर बड़ी विस्मित हुई। उस कौतुकको देखनेके लिये सभी तपस्वी वनवासी और स्वयं दमयंती भी वहाँ आ पहुँची। वहाँ पहुँचकर उन्होंने नवीन केवल-ज्ञान प्राप्त करने वाले सिंहकेसरी नामक मुनिका महा-ज्योतिर्मय स्वरूप देखा। उन्हें देख, सब लोग उन्हें प्रणाम कर उनके पास बैठ गये। श्रीयशोभद्र सूरि भी उन केवलीको प्रणाम कर अति प्रसन्न चित्तसे उनके पास बैठ गये। उस समय सिंहकेसरी मुनिने उन सब लोगोंको कर्म-मर्मविध-धर्मका उपदेश करते हुए कहा,—

"हे भव्य जीवो! इस संसारमें जीवन, यौवन, लक्ष्मी, तीनों चीजें बड़ी ही चञ्चल हैं। यह सदा सब दिन एकसी नहीं रहतीं, इसलिये मोहमें पड़े हुए हे प्राणियो! तुम इस उत्तम मनुष्य जन्मको व्यर्थ क्यों गवाँ रहे हो? इस मनुष्य-रूपी कल्प-वृक्षका फल मुक्ति है। उसकी प्राप्तिके लिये तुम्हें हर तरह तैयार हो जाना चाहिये और मृग-तृष्णाका परित्याग करना चाहिये।'

इस प्रकार उपदेश देकर केवलीने वहाँ बैठे हुए तपस्वियोंसे कहा,—'दमयंतीने तुम लोगोंसे जिस धर्मका आचरण करनेको कहा है, वही सत्य धर्म है। सत्यके अनुसार दमयंतीकी वाणी

परमें पवित्र है। यह परम सती है। यह कभी असत्य वचन मुँहसे नहीं निकाल सकती। इसलिये तुम लोग इसकी बातोंपर पूर्णतया विश्वास रखो, देखो इसने बात-की-बातमें चोर डाकुओंको दूर भगा दिया, आकाशकी वृष्टिको कुण्डमें सीमाबद्ध कर दिया और रीछ, व्याघ्र और सर्पादिसे भरे हुए इस जङ्गलमें अकेली निर्भय विचरण कर रही है। सतीके सतीत्वका यह प्रभाव देखकर, तुम्हें इससे उचित शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।"

"केवलीकी यह आनन्द-दायिनी बात सुनकर तपस्वियोंके कुलपतिने कहा,—"हे महाराज! आप मुझे साधुव्रतमें दीक्षित कर दीजिये।"

सिंहकेसरीने कहा,—"सब आचार्योंमें महा बुद्धिमान् श्री-यशोभद्रसूरि ही श्रेष्ठ हैं, इसलिये वे ही तुम्हें श्रमणोंका व्रत ग्रहण करायेंगे। वे मेरे भी गुरु हैं।"

कुलपतिने कहा,—"हे भगवन्! आपने इस तरुण वयस-में प्रव्रज्या क्यों अङ्गीकार कर ली? इस बातसे मुझे आश्चर्य हो रहा है।"

यह सुन सिंहकेसरीने कहा,—"कोसला नामक नगरीमें नल नामके एक राजा थे। उनकी ही स्त्रीका नाम दमयन्ती है। इन दिनों वहाँ नलके छोटे भाई कूबर वहाँ राज्य कर रहे हैं। मैं उन्हींका पुत्र सिंहकेसरी हूँ। शृङ्गपुरीके राजा केसरीकी पुत्रीके साथ विवाहकर मैं अपनी नगरीकी ओर लौटा जा रहा था। इसी समय इस पर्वतके शोभायमान शिखरोंको

देखकर मैं यहाँ विश्राम करनेके लिये ठहर गया। सौभाग्य-वश, मुझे गुरुवर श्रीयशोभद्र सूरीके दर्शन प्राप्त हुए। इन्होंने मुझे यह देशना सुनाई, कि यह संसार अनित्य है। मैंने इनसे पूछा, कि मैं कितने दिन संसारमें जीऊँगा? उन्होंने कहा, कि तुम्हारी आयुके केवल पाँच दिन शेष रह गये हैं। मृत्युको यों सिरपर आयी देख, मेरे चेहरेका रङ्ग फीका पड़ गया। इसी समय सारे संसारके जीवोंपर अत्यंत दया रखने वाले श्री यशोभद्र सूरिने कहा, कि एक दिनके लिये व्रत ग्रहण करनेसे भी मनुष्य जन्म मरणके भयसे छूट जाता है, तुम्हारे तो अभी आयुके पाँच दिन बाकी हैं, इसलिये तुम समस्त भय और चिन्ताका त्याग कर व्रत ग्रहण कर लो। गुरुका यह वचन सुनते ही मैंने अपनी बन्धुमती नामक स्त्रीको परित्याग कर, गुरुसे पाँचों महाव्रत ग्रहण किये और गुरुसेवामें तत्पर रहते हुए इन्हींकी आज्ञासे इस गिरी-शिखरपर निवासकर कायोत्सर्ग-ध्यानमें लीन हो, समस्त घाती कर्मोंका क्षयकर, लोकालोकको प्रकाशित करने वाला यह केवल-ज्ञान प्राप्त किया है।

यह कह, वे फिर ध्यानमें लीन हो रहे। तदनंतर मुनीश्वरने योग-निरोधकर, शेष अघाति कर्मोंका भी छेदन कर, परम पद प्राप्त कर लिया। उनके शरीरका पुण्यवान् देवताओंने अग्नि संस्कार किया। कुलपतिने उनके आज्ञानुसार गुरुवर श्रीयशोभद्रसे साधुओंके योग्य पञ्च महाव्रत ग्रहण कर लिये।

इसी समय दमयंतीने भी उनसे चारित्र ग्रहण करनेकी

प्रार्थना की। यह सुन, गुरुने कहा,—"तुम चारित्र ग्रहण करना चाहती हो, यह बड़ी अच्छी बात है; पर देवी! अभी तुम्हें इस संसारके बहुत कुछ सुख भोगने बाकी हैं, इसलिये तुम्हें अभी दीक्षा नहीं लेनी चाहिये।" यह कह, वे दमयंतीको उसके पूर्व जन्मकी कथा सुनाने लगे। उन्होंने कहा,—

"पूर्व जन्ममें राजा नल मम्मण नामक राजा थे। तुम्हीं उनकी रानी थीं और तुम्हारा नाम वीरमती था। एक समयकी बात है, कि तुम-दोनों सेना समेत शिकार खेलने गये। कुछ दूर जाने पर तुम्हें एक मुनि दिखाई दिये। उन्हें सामनेसे आते देख, तुम्हारी सेनाके सिपाहियोंने अपशकुन समझकर उन्हें आनेसे रोक दिया। बेचारे बड़ी देर तक वहीं खड़े रहे। यह देख, तुम्हें दया आयी और तुमने पूछा, कि महाराज! आप कहाँ जा रहे हैं? तुम्हारे इन विनय भरे वचनोंसे मुनिको सन्तोष तो अवश्य हुआ, पर तुम्हारे सैनिकोंने जो उन्हें बारह घण्टों तक रोक रखा, उसी दोषसे इस जन्ममें तुम दोनों पति-पत्निका बारह वर्षके लिये वियोग हुआ। बारह वर्ष पूरे होने पर तुम दोनोंका फिर मिलाप होगा और तुम्हारे समस्त नष्ट वैभव पुनः प्राप्त होंगे।"

इसी तरह बातें करते हुए रात बीत गई। प्रातःकाल होआया, सबके साथ गुरु यशोभद्रसूरि भी तापसपुरमें आये। वहाँ आकर उन्होंने जिनेश्वरके मन्दिरकी प्रतिष्ठा की और समस्तनगर-वासियोंको शुद्ध देशना सुनाई। उसी गुफामें दमयन्तीने

सात वर्ष बिता दिये। तदनन्तर एक दिन उस गुफाके द्वार पर आकर एक पुरुषने अमृतमयी वाणीमें दमयन्तीसे कहा,—"हे भद्रे। मैंने तुम्हारे पतिको पासके ही एक स्थानमें देखा है। वह स्थान यहाँसे बहुत दूर नहीं है। मैं उन्हें पहचान लेना चाहता हूँ, पर दूसरा कोई मेरे साथ नहीं है, इसलिये लाचार हूँ। यह कह, वह पुरुष वहाँसे तुरत पीछे लौट चला। उसकी कानोंको आनन्द देने वाली बातें सुन, दमयन्ती जल्दी-जल्दी पैर उठाती हुई उस गुफाके बाहर निकली और उस पुरुषके पीछे-पीछे दौड़ी। उसने लाख चिल्ला-चिल्लाकर पुकारा, पर वह पुरुष क्षणभर भी न ठहरा और झपाटेके साथ आगे बढ़ता ही चला गया। इसी समय अन्धाधुन्ध चलती हुई दमयंतीके पैरोंमें ठोकर लग गयी और वह जड़से उखड़ी हुई लता-की तरह भूमिमें गिर पड़ी। इतनेमें वह पुरुष एकबारगी उसकी दृष्टिके परे हो गया। थोड़ी देर बाद अपनेको सम्भाल कर दमयंती उठ बैठी और फिर गुफाकी ओर लौटने लगी, पर रास्ता भूल जानेके कारण वह उस गुफा तक नहीं पहुँच सकी। इस प्रकार दोनों ओरसे निराश हो, वह बड़ी दुःखित हुई और उस घोर जङ्गलमें इधरसे उधर भटकने लगी। तब वह लाचार हो हाहाकार करती हुई कहने लगी,—"हाय! दुर्दैवने मुझे क्या-क्या दुःख नहीं दिखाये? हा दैव! तुम्हारा मैंने क्या बिगाड़ा है, जो तुम इस तरह मुझे पद-पद पर दुःख दे रहे हो? न तो वह आदमी ही दिखाई देता है, न मेरी गुफा ही नज़र आती

है। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इस घोर वनमें अकेले भटकती हुई मुझ अबलाका क्या हाल होगा ? मेरी कौनसी गति होनी बाकी है ? इस दुःखसे तो मर जाना ही अच्छा है। प्राण ! तुम इस दुःखसे भरे हुए तन-पीञ्जरेको छोड़कर उड़ क्यों नहीं जाते, जिससे तुम्हें सुख तो मिले।" इस प्रकार करुणा पूर्ण-वचन बोलती हुई दमयंती व्याकुल होकर रोने लगी। इसके बाद वह फिर चलने लगी, पर रह-रहकर उसके पैर रुक जाते और वह पछाड़ खाकर ज़मीन पर गिर पड़ती और फिर रोने लगती थी। वह इसी तरह घोर दुःखकी अवस्थामें पड़ी हुई भटक रही थी, कि इतनेमें एक राक्षसीने उसके पास आकर कहा,—"अरी ! कहाँ चली जा रही है, ठहर, मैं तुझे अभी सफ़ाचट किये डालती हूँ।" उसकी यह भय-दायनी बात सुन दमयंती डरके मारे थर-थर काँपने लगी; पर तुरतही उसे ढाढस हो आया और उसने बड़े ज़ोरसे कहा,—"यदि सिवा नलके मेरे मनमें कभी किसी पर पुरुषका ध्यान नहीं आया हो, अरहन्त देवको मैं शुद्ध मनसे मानती होऊँ, मेरे गुरु उत्तम साधु हों और जैन धर्ममें मेरी अविचल रति हो, तो इस राक्षसीके सारे मनोरथों पर अभी पाला पड़ जाये।" दमयंतीके मुँहसे ये वचन निकलते ही उस राक्षसीको सारी शक्तियाँ क्षीण हो गयीं और वह दमयंतीको प्रणामकर वहाँसे जान लेकर भाग गयी। सच है, सतीके प्रतापके सामने कोई नहीं ठहर सकता।

छठा परिच्छेद

आश्रय-लाभ।

नलने पूछा,—"हे विप्र, कहिये, इसके बाद क्या हुआ? रानी दमयन्तीने उस घोर वनमें भटकती हुई और कौन-कौनसे दुःख उठाये? उस बेचारीको क्या कहीं आश्रय मिला या नहीं?"

है। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इस घोर वनमें अकेली भटकती हुई मुझ अबलाका क्या हाल होगा ? मेरी कौनसी गति होनी बाकी है ? इस दुःखसे तो मर जाना ही अच्छा है। प्राण ! तुम इस दुःखसे भरे हुए तन-पीञ्जरेको छोडकर उड़ क्यों नहीं जाते,जिससे तुम्हें सुख तो मिले।" इस प्रकार करुणा पूर्ण वचन बोलती हुई दमयंती व्याकुल होकर रोने लगी। इसके बाद वह फिर चलने लगी, पर रह-रहकर उसके पैर रुक जाते और वह पछाड़ खाकर ज़मीन पर गिर पड़ती और फिर रोने लगती थी। वह इसी तरह घोर दुःखकी अवस्थामें पडी हुई भटक रही थी, कि इतनेमें एक राक्षसीने उसके पास आकर कहा,—"अरी ! कहाँ चली जा रही है, ठहर, मैं तुझे अभी सफ़ाचट किये डालती हूँ।" उसकी यह भय-दायनी बात सुन दमयंती डरके मारे थर-थर काँपने लगी; पर तुरतही उसे ढाढस हो आया और उसने बड़े ज़ोरसे कहा,—"यदि सिवा नलके मेरे मनमें कभी किसी पर पुरुषका ध्यान नहीं आया हो; अरहंत देवको मैं शुद्ध मनसे मानती होऊँ, मेरे गुरु उत्तम साधु हों और जैन धर्ममें मेरी अविचल रति हो, तो इस राक्षसीके सारे मनोरथों पर अभी पाला पड़ जाये।" दमयंतीके मुँहसे ये वचन निकलते ही उस राक्षसीकी सारी शक्तियाँ क्षीण हो गयी और वह दमयंतीको प्रणामकर वहाँसे जान लेकर भाग गयी। सच है, सतीके प्रतापके सामने कोई नहीं ठहर सकता।

छठा परिच्छेद

आश्रय-लाभ।

नलने पूछा,—"हे विप्र, कहिये, इसके बाद क्या हुआ? रानी दमयन्तीने उस घोर वनमें भटकती हुई और कौन-कौनसे दुःख उठाये? उस बेचारीकी क्या गति हुई? उसे कहीं आश्रय मिला या नहीं?"

ब्राह्मणने कहा,—"भाई! जब वह भयानक राक्षसी दमयन्तीके सतीत्वसे शक्तिहीन होकर वहाँसे चली गई, तब दमयन्ती भी वहाँसे आगे बढ़ी। चलते-चलते उसे बड़ी प्यास मालूम होने लगी, इसी समय दूर पर मृग-जल देखकर उसने सोचा, कि वहाँ कोई जलाशय है, पर ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती गई, त्यों वह मृग-जल भी दूर भागता गया! इस प्रकार दौड़ती हाँफती हुई वह जब एक दम हैरान हो गई, तब आर्त होकर कहने लगी,—"यदि मैंने सच्चे मनसे अपने शील सतीत्वका पालन किया होगा और मेरी आत्मा एकबारगी शुद्ध और पवित्र होगी, तो अवश्य ही अभी यहाँ जल उत्पन्न हो जायेगा। यह,

कह, उसने बड़े ज़ोरसे पृथ्वी पर पैर पटका। उसका पाद प्रहार होते ही पृथ्वी फाड़कर जल निकल पड़ा—बड़ा मनोहर सरोवर सा पैदा हो गया। दमयन्तीने उसीका मधुर जल पानकर उसमें स्नान किया और अपनी थकावट तथा प्यास दूर की। थोड़ी देर तक उसी जलाशयके पास विश्राम कर, वह वहाँसे आगे बढ़ी, परन्तु लगातार चलते रहनेसे उसके पैर काम नहीं देते थे, इसलिये वह हारकर एक बड़के पेड़की ठंढी छायामें बैठकर विश्राम करने लगी। इसी समय उस राहसे गुज़रते हुए कुछ पथिकोंने उसके पास आकर पूछा,—"देवी! आप कौन हैं? कहाँसे आयी हैं? कहाँ जायेंगी? इस तरह मनमारे, उदास मुँह किये, इस पेड़के नीचे क्यों बैठी हुई हैं आपका यह अलौकिक रूप देखकर तो यही मालूम होता कि, आप इस तट-वृक्षपर रहने वाली कोई देवी हैं।"

"उन लोगोंकी यह बात सुन, दमयन्तीने कहा,—"भाइयो मैं देवी नहीं, तुम्हारी ही तरह हड्डी-चमड़ेकी बनी हु मानवी हूँ। मैं जातिकी वणिक-कन्या हूँ। अपने स्वामी साथ-साथ पिताके घर चली जाती थी, कि रास्तेमें मेरे स्वा मुझे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये। इसलिये भाइय कृपाकर मुझे तापसपुरकी राह दिखला दो, तो बड़ी दया हो

पथिकोंने कहा,—"यहाँसे पश्चिमकी ओर तापसपुर सूर्य अस्त हो रहा है, इसलिये हम आपको वहाँ तक प चानेमें असमर्थ हैं। यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो हम

साथ चलिये। जहाँ हमलोग रातको रहेंगे, वहीं आप भी सुखसे रात बितायेंगी।"

तदनन्तर उन पथिकोंके सरदारने अपने साथियोंसे कहा,—"भाइयो! यह कोई महा दुखिया स्त्री मालूम होती है। इसे अपने साथ ले चलना चाहिये।" यह कह, उसने दमयन्तीसे कहा,—"बेटी! मैं तुम्हें अपनी बेटीके समान मानता हूँ। इसलिये मेरे साथ चलनेमें आनाकानी न करो।" यह कह, उसने दमयन्तीको सवारी पर बैठा लिया और अपने साथ ले चला। जब वे लोग अचलपुरमें आ पहुँचे, तब दमयन्तीके कहनेसे उन्होंने उसे वहीं छोड़ दिया। थकी-माँदी दमयन्तीने एक बावलीमें जाकर हाथ पैर धोये और जलपान किया। वहाँसे आकर वह फिर वहीं बैठ रही, जहाँ पथिकोंने उसे सवारीसे नीचे उतारा था। वहाँ बैठी-बैठी वह यही सोचने लगी, कि अब मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? पर उसकी समझमें कुछ भी न आया। इसी समय बहुतसी पुर-नारियाँ उस बावलीसे जल लानेके लिये जाती हुई दिखाई पड़ीं। वे आपसमें राजा ऋतुपर्ण और रानी चन्द्रयशाकी बार-बार बड़ाई करती चली जाती थीं। पुर-नारियाँ दमयन्तीका यह भुवनमोहन-रूप देख, अचम्भेमें आ गयीं। उन्होंने पानी भर कर राजमहलमें लौटने पर रानी चन्द्रयशासे कहा,—"महारानी! आज इस नगरमें एक अद्भुत रूपवती युवती आयी है। वह अकेली चुप-चाप बावलीके रास्तेमें बैठी हुई है। उसका

वह चन्द्रमासा मुख, कमलसे नेत्र, अनारकेसे दाँत, मृणालको सी बाहु और सुन्दर-सुडौल शरीर देख कर हम स्त्रियोंको भी मोह प्राप्त हुए बिना न रहा। ऐसा मालूम होता है, मानों स्वर्गसे साक्षात् लक्ष्मी ही उतर आयी है। एक बार तो उसे देखकर हमें यही भ्रम हुआ, कि कहीं (आप को पुत्री) राजकुमारी चन्द्रवती ही तो यहाँ नहीं आयी।"

यह अद्भुत बात सुनते ही कौतूहलवश रानीने उन्हें तत्काल उस रूपवतीको राजमहलमें ले आनेकी आज्ञा दी। रानीका हुक्म पाते ही वे सब दमयन्तीके पास आकर कहने लगीं,—"हे देवी! तुम्हें अपनी पुत्री मानकर यहाँके राजाकी पटरानी चन्द्रयशा देवीने तुम्हें अपने पास बुलाया है। इसलिये तुम अभी हमारे साथ चलो और उनसे अपना सब हाल कह सुनाओ। यहाँ अकेली क्यों बैठी हो?"

यह सुन, दमयन्ती तुरत उठ खड़ी हुई और उन स्त्रियोंके साथ चलकर थोड़ी ही देरमें रानी चन्द्रयशाके पास आ पहुँची। एक दूसरीको देखते ही वे, न जाने क्या सोचकर, शङ्का और सन्देहमें पड़ गयी। दमयन्तीको यह शङ्का हुई, कि कहीं यह मेरी माता पुष्पदन्ताकी बहन चन्द्रयशा ही तो नहीं है। उधर चन्द्रयशाने सोचा, कि कहीं यह मेरी बहन पुष्पदन्ताकी पुत्री दमयन्ती तो नहीं है? इस प्रकारका सन्देह मनमें उत्पन्न हुआ सही, पर उसका भण्डाफोड़ नहीं हुआ। रानीने सोचा, कि यह मेरा कोरा भ्रम ही है, क्योंकि मेरी बहनकी लड़की तो

बड़े भारी राजाके घर व्याही है, उसका ऐसा हाल कैसे होगा? तो भी रानीने दमयन्तीको आते ही गलेसे लगा लिया और दमयन्तीने उसके पैरों पर गिरकर प्रणाम किया। उसे प्रेमसे उठाते और दुबारा छातीसे लगाते हुए रानी चन्द्रदयाने कहा,—"बेटी! आजसे तू मेरी पुत्री चन्द्रवतीकी सहेली बनकर यहीं रह। तुम दोनोंको मैं एक समान मानूँगी और तुम्हें कोई कष्ट न होने दूँगी। तुम मुझे अपनी रामकहानी कह सुनाओ।"

यह सुन, दमयन्तीने सच्ची बात छिपाते हुए रानीसे भी वही बनावटी कथा कह सुनायी, जो उसने पथिकोंसे कही थी। इसके बाद उसने कहा,—"महारानी! आपकी ओरसे जो प्रति दिन दीन-दुखियोंको सदाव्रत बँटता है, उसीका काम मुझे सौंप दीजिये। मैं प्रतिदिन अपने हाथों दीन-दुखियोंको सदाव्रत बाँटा करूँगी। रानी चन्द्रयशाने उसकी यह बात सानन्द स्वीकार कर ली और उसे सदाव्रत बाँटनेका ही काम सौंपा। उस दिनसे वह प्रतिदिन सदाव्रत बाँटने लगी।

जहाँ दमयंतीका डेरा था, उसके पास ही राजपथ था। उसी रास्ते एक दिन कुछ राजकर्मचारी एक चोरको बाँधकर लिये जाते थे। ज्योंही उस चोरकी दृष्टि दमयन्ती, पर पड़ीत्योंही वह बड़ी दीनताके साथ चिल्लाने लगा,—"देवी! मेरी रक्षा करो। रक्षा करो।" उसकी यह करुणा-भरी वाणी सुनते ही दमयन्तीको उसपर दया आ गयी। उसने चोरको बाँधकर ले-जाने वाले कर्मचारियोंसे पूछा,—"भाइयो! इस आदमीने कौनसा



अपराध किया है? उन्होंने कहा,—"इसने राजकुमारी चन्द्रवती-के गहनेकी सन्दुकची चुराई है, इसलिये हम लोग इसे वध्यभूमिमें मारनेके लिये, लिये जाते हैं।" दमयन्तीने कहा,—"तुम अभी इस चोरको छोड़ दो। जब राजा तुमसे पूछेंगे, कि तुमने इसे क्यों नहीं मारा? तब मैंही तुम्हारे तरफ़से उन्हें जवाब दे दूँगी। यह सुनकर भी जब उन राजकर्मचारियोंने उस चोरको नहीं छोड़ा, तब दमयन्तीने कहा,—"इस चोरके बन्धन अभी खुल जायें।" इतनी बात उसके मुँहसे निकलते ही उस चोरके बन्धन खुल गये और उसने निकल भागनेकी राह देखनी शुरू की, पर यह तमाशा देखकर इतने लोग वहाँ आ इकट्ठे हुए, कि उसे भागनेकी राह नहीं मिली। राजाको भी इस बातका पता चला। वे भी अपने मन्त्रियों आदिके साथ वहाँ आ पहुँचे और दमयन्तीसे कहने लगे,—"बेटी! राजाओंका यह सनातन धर्म है, कि दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करें। यदि ऐसा नहीं किया जाये, तो देशमें बे तरह उपद्रव और उत्पात जारी हो जायें, दिन दहाड़े चोरी-डकैती होने लगे, प्रजाका नाश हो जाये और राज्यकी सारी व्यवस्था उलट जाये। राजा प्रजासे जो धन करके रूपमें लेता है, उसको प्रजाकी रक्षामें ही खर्च करना उचित है। जो राजा ऐसा नहीं करता, उसे बड़ा पाप होता है और उसका समस्त वैभव कुछ ही दिनोंमें लुप्त हो जाता है। इसलिये यदि यह चोर छोड़ दिया जायेगा तो बड़ा भारी अन्याय होगा और इससे लोग निडर होकर चोरी किया करेंगे।"

दमयन्तीने कहा,—"महाराज! मैं आपकी बात मानती हूँ, पर जब यह मेरी आँखोंके सामने आ गया, तब मैं इसे अकारण ही कैसे मरने दूँगी? मेरा अर्हन्तधर्म पालन करना किस कामका, यदि मैंने इसे मुझ फाँसी पड़ने दिया या घातकके हाथों इसकी गरदन कटने दी?"

इस प्रकार बड़ी देर तक राजा और दमयन्तीमें बातें हुईं, किन्तु अन्तमें राजाको दमयन्तीके आग्रहके सामने हार मान लेनी पड़ी और उस चोरको छोड़ देनेका हुक्म जारी करना पड़ा। सतियों और पतिव्रताओंकी बात बड़े-बड़े राजा-महाराजोंको भी माननी पड़ती है। छुटकारा पाने पर वह चोर आकर दमयंतीके पैरों पर गिर पड़ा और बोला,—"देवी! आज आपकी कृपासे मेरा नया जन्म हुआ। आपके इस दयामय व्यवहारके कारण मैं आपको अपनी माताके ही समान मानता हूँ। यह कह वह आनन्दित चित्तसे अपने घर चला गया और उस दिनसे वह प्रतिदिन आकर दमयंतीको प्रणाम करने लगा।

एक दिन दमयंतीने उससे पूछा,—"तुम कौन हो, यह मुझे ठीक-ठीक बतलाओ।" उसने कहा,—"मैं तापसपुरके वसन्त नामक सार्थपतिका दास पिङ्गल हूँ। एक दिन मैं उनके यहाँसे कुछ हीरे मोती चुराकर भाग आया। मार्गमें मेरे ऊपर भी लुटेरे टूट पड़े और सब कुछ लूट ले गये। दुष्टोंको जानकी हमेशा आफ़त रहती है। वहाँसे भागा-भागा मैं यहाँ आया और राजमहलमें नौकर बहाल हो गया। परसों मैं अकेला ही राजमहलमें घूम

रहा था, दूसरा कोई वहाँ नहीं था। इसी समय एक जग
मोती जड़ी सन्दूकको देखकर मेरे मुँहमें पानी भर आया औ
मैं उसे काँख-तले दबाये हुये ले चला। इसी समय मुँह देखक
भीतरका हाल जान लेने वाले राजाने मुझे देख लिया। उन्हों
मुझे सिपाहियोंके सुपुर्द कर, उन्हें मुझे मार डालनेका हु
दे दिया। इसके बाद किसी तरह मैंने आपको देखा। मै
आपने कृपाकर मेरी जान बचायी। यह तो आपको मालूम ही है
आपके इस उपकारको मैं कभी नहीं भूलूँगा। भला प्रकार
दया वर्षा करनेवाली देवीसे कोई कब उऋण हो सकता है
कहीं कोई उस मेघ-मालाके उपकारसे भी मुक्त हुआ है,
वर्षाकालमें जल बरसाकर संसार भरके जीवोंके लिये अन्न
प्रबन्ध कर देती है? देवी! जिस समय आप तापसपुरसे चु
चाप चली आयी, उस समय सार्थपतिको इतना शो
हुआ, कि उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया। श्रीयशोभद्र सूरि
उन्हें और अन्यान्य लोगोंने धैर्य देकर शान्त किया। त
सातवें दिन सार्थपतिने भोजन किया।

एक दिन सार्थपति सुवर्ण-रत्नादिकको भेंट लिये हुए कौ
ला पुरीके कूवर राजासे मिलने गये। भेंट स्वीकार कर राजा
उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उनका नाम वसं
श्रीशेखर रखकर उन्हें छत्र, चामर और दण्ड आदि राजचि
दे दिये। इसके बाद कुछ दिन वहाँ रहकर वे तापसपुर लौ
आये और बड़े आनन्दसे वहाँका राज्य करने लगे। माता

यह सब वैभव उन्हें आपकी ही कृपासे प्राप्त हुआ। अब कृपा-कर आप मुझे ऐसा उपदेश दें, जिससे मेरे सारे पाप कट जायें।" यह सुन, दमयन्तीने कहा,—"बहुत अच्छा। तुम चारित्र ग्रहण कर लो।"

दूसरे दिन वहाँ पर दो मुनि आये। उन्हें शुद्ध अन्न जल खिला-पिला कर दमयन्तीने उनसे पूछा,—"महाराज कृपाकर कहिये, यह पिङ्गल चारित्र ग्रहण करने योग्य है या नहीं? मुनियोंने कहा,—"हाँ यह चारित्र ग्रहण करनेके लिये सर्वथा उपयुक्त पात्र है।"

तब पिङ्गलने उन मुनियोंसे चारित्र ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की और वे उसे जिनमन्दिरमें ले गये। वहाँ उसे प्रवज्या अवलम्बन कराकर मुनि अपने स्थानको चले गये। दमयती वहीं रहने लगी। सारे नगरके लोग उसके आश्चर्यदायक कार्योंको देखकर उसकी बड़ाई करते और उससे सदा प्रसन्न रहते थे। कोई उससे किसी तरह असन्तुष्ट नहीं होता था। उस-की धार्मिकता, दयालुता और सहृदयताने थोड़े ही दिनोंमें वहाँ-के सब लोगोंको उसका हितैषी बना दिया।

सातवाँ परिच्छेद

दमयंतीका दूसरा स्वयंवर


वह ब्राह्मण फिर कहने लगा,—"हे भाई दमयंतीकी करुणाभरी कहानी सचमुच बडी विचित्र है। बेचारी राजाकी लडकी और राजाकी स्त्री होकर भी ऐसे दुःख भोग रही है, कि देखनेवालोंको भी तरस आता है।

रानी चन्द्रयशाके पास रहते हुए कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे, कि एकदिन कुण्डिनपुरसे (दमयन्तीके पीहरसे) एक ब्राह्मण उस नगरमें आया और राजासे मिलनेके बाद महारानीके पास आ उन्हें आशीर्वाद दे, उनके पास ही बैठ रहा। उसका उचित आदर-सत्कार कर रानीने उससे पूछा,—"हे महाराज! मेरी बहन, विदर्भनरेशकी पटरानी पुष्पदंता अच्छी तरह है न?"

हरिमित्र नामक उस ब्राह्मणने कहा,—"रानीजी! हमारे राजा और रानी तो अच्छी तरह हैं, परन्तु इस समय अपनी लडकी और दामादके वनवासी हो जानेके कारण वे बडी चिंता-में हैं। उन दोनोंको ढूँढनेके लिये जगह-जगह आदमी रवाना

किये गये हैं, परन्तु अभी तक तो उनका कहीं पता नहीं लगा।"

ब्राह्मणके मुँहसे राजा नल और रानी दमयन्तीके एकाएक वनवासी होनेका यह समाचार सुनकर, रानी चन्द्रयशाको बड़ा दुःख हुआ और वे नीचा सिर किये चुपचाप आँसू बहाने लगीं। कुछ स्वस्थ होकर उन्होंने पूछा,—"महाराज! आपने यह कैसा समाचार सुनाया? बेटी दमयंती पर एकाएक यह विपद कैसे आयी?"

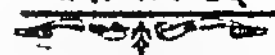
यह सुन, हरिमित्रने कहा,—"बड़ा आश्चर्य है। सारी दुनियाँ उनका हाल जान गई और आपको अभी तक इसकी बिलकुल खबर ही नहीं है। राजा नल अपने भाई कूबरके साथ जुआ खेलने में अपना सारा राज-पाट हार गये और राजधानी छोड़कर वनवासी हो गये। वनमें जाकर उन्होंने दमयन्तीको भी अकेले छोड़ दिया और आप न जाने कहाँ चले गये, आजतक उन दोनोंका कहीं पता नहीं है। लोग खोजते-खोजते हैरान हो गये, पर अभी तक इस बातका पता नहीं लगा, कि नल कहाँ गये और उनसे बिछुड़ कर दमयंती कहाँ गयी और क्या हुई? यह भी नहीं मालूम कि वह जीती है या मर गई?"

यह हाल सुनतेही रानीको मानों वज्र सा घा लगा और वे मूर्छित होकर भूमिमें गिर पड़ीं। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे दासियाँ उन्हें होशमें लायीं। तब रानीने घबराये हुए स्वरमें बड़ी व्याकुलतासे पूछा,—"ब्राह्मण देवता! तब क्या इस उन दोनोंका कहीं पता न लगेगा?"

हरिमित्रने कहा,—"रानोजो! यह मैं कैसे कहूँ? परन्तु अभीतक तो उनका कहीं पता-ठिकाना नहीं है। मैं भी राजा भीमरथका भेजा हुआ उन्हें ही ढूँढता चलता हूँ। न जाने मैं कितने जङ्गलों, पहाड़ों, गाँवों और नगरोंकी धूल फाँक आया, पर कहीं उनका पता नहीं पाया। हाय! मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ गया!"

यह सुन, रानी चन्द्रयशा और भी विलाप करने लगीं। यह खबर थोड़ी ही देरमें सारे राजमहलमें फैल गयी, और जहाँ-तहाँ सब लोग रोने लगे। साथ ही नलकी दुर्बुद्धिकी भी निन्दा ज़ोरोंके साथ होने लगी। सारे राजमहलमें शोकका साम्राज्य छा गया। इतनेमें भोजनका समय हो गया। सब लोग खाने-पीनेके प्रबन्धमें लग गये। हरिमित्र भी वहाँसे उठकर धर्म-शालामें भोजन करने गया।" मैं पहले कह चुका हूँ, कि इन दिनों धर्मशालाका प्रबन्ध दमयंतीके ही हाथोंमें था। वही आये हुए अतिथियोंको सदाव्रत दिया करती थी। ज्योंही वह हरिमित्रको भोजन देने आयी, त्योंही हरिमित्रने उसे पहचान लिया और प्रसन्नताके मारे एकाएक बोल उठा,—"अहा! आज कैसे आनन्दका दिन है, कि इतने दिनोंके परिश्रमके बाद मैंने तुम्हें देख लिया। सारे भूमण्डलमें लोग तुम्हें ढूँढ़ते फिर रहे हैं, पर कहीं किसीको तुम्हारा पता नहीं लगा और मैंने आज तुम्हें पा लिया। मुझसे बढ़कर भाग्यवान और कौन होगा?"

यह कह, वह ब्राह्मण सीधा रानी चन्द्रयशाके पास दौड़ा



हुआ चला गया और बड़े हर्षसे कह उठा,—"रानीजी! आपकी जय हो! हमारे मनोरथ आज सफल हो गये। दमयन्ती तो आपके घरमें ही है।" हरिमित्रकी यह बात सुनते ही रानीके शोकाश्रु आनन्दाश्रुमें बदल गये और वे दौड़ी हुई धर्मशालामें दमयंतीके पास चली आयीं। वहाँ आकर वे दमयन्तीको गलेसे लगाकर गद्गद कण्ठसे कहने लगीं,—"हाय! मैं बड़ी अभागिन हूँ, जो तुम इतने दिन मेरे ही घर रहीं और मैं तुम्हें नहीं पहचान सकी। जितने दिन मैंने तुझे नहीं पहचाना उतने दिन मेरे जीवनके बड़े दुर्दिन थे। बेटी! तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया। माकी बहन माकी ही बराबर होती है। उसके आगे भला तुम्हें किस बातकी लज्जा थी, जो तुम अपनेको आज तक छिपाये रहीं? खैर, बेटी! अब यह तो बताओ, राजा नलने तुमको परित्याग कर दिया है, अथवा तुमने ही उनको छोड़ दिया है। पतिव्रता स्त्रियाँ तो कदापि अपने स्वामीसे अलग नहीं होतीं, फिर तुम्हारे जैसी शीलवती और पतिव्रता स्त्रीका पतिको परित्याग करना तो एक बारगी असंभव है। भला बतलाओ तो सही, तुम्हारा वह सहस्रांशुके समान चमकता हुआ ललाट-तिलक क्या हुआ?"

यह सुनतेही दमयन्तीने पानीमें अपनी अँगुलियाँ डुबोकर ललाट पर फेर दीं, जिससे उसी क्षण उसका ललाट-तिलक ऐसा चमक उठा, कि उसकी चमकके आगे सबकी चमक फीकी पड़ गयी। तदनन्तर रानी चन्द्रयशा दमयंतीका हाथ पकड़े,

उसे महलोंके अन्दर ले गयीं और वहाँ उसे सुगन्धित और शीतलजलसे स्नान करा, उत्तम वस्त्र पहनाये। इसके सिवा रानी चन्द्रयशाने दमयंतीके लिये सब प्रकारकी सुविधा-जनक व्यवस्थायें करादीं। कुछ देर बाद रानी उसे लिये हुई राजाके पास आयीं और उनको दमयंतीका परिचय दिया। सुनकर राजाको जितना आनन्द हुआ, उससे कहीं अधिक दुःख उसकी अवस्था देखकर हुआ। इसके बाद राजाके पूछने पर उसने अपनी आद्योपान्त समस्त कथा उन्हें सुनादी। सुनते-सुनते राजाकी आँखोंमें आँसू भर आये। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे अपने मनके वेगको रोक, रूमालसे अपने आँसू पोंछते हुए राजाने कहा,—"बेटी! इस संसारमें कर्मही सबसे बलवान् है। इसीके वशमें इस संसारका सब कुछ है। जगतमें सर्वत्र प्रकाश फैलाकर अन्धकारको दूर करनेवाले सूर्य भी सन्ध्याके समय अस्त हो जाते हैं। उनका यों अस्त और उदय होना ही कर्मके शुभाशुभ फलका उदाहरण प्रकट करता है।"

इसी समय सन्ध्या हो आयी, चारों ओर अन्धेरा छा गया, पर दमयंती राजाके पास ही बैठी थी, इसलिये उसके ललाट-तेजसे वहाँ सूर्यकी अपेक्षा भी अधिक प्रकाश फैल रहा था। उसके तेजसे समस्त सभामें दिनका सा प्रकाश फैला हुआ देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होंने कहा,—"ओह! यह बड़े आश्चर्यकी बात है, कि रात होने पर भी यहाँ दिनकी तरह उँजेला हो रहा है। यह प्रकाश कहाँसे आ रहा है?"

रानी चन्द्रयशाने कहा,—"महाराज! यह प्रकाश दमयन्तीके ललाटसे निकल रहा है। विदर्भ-राजकन्याके इस ललाट-भूषणकी लीला बड़ी विचित्र है।"

"रानीकी यह बात सुन, राजाने पिताके समान प्यारसे उसके ललाटपर हाथ फेरा, जिससे तुरत ही सभामें अन्धकार छा गया; पर ज्योंही उन्होंने अपना हाथ हटा लिया, त्योंही फिर पहलेकी तरह वहाँ प्रकाश फैल गया। इसी समय आकाश-मार्गसे एक देवता उस दरबारमें उतर पड़े और दमयन्तीको प्रणाम कर कहने लगे,—"हे देवी! किसी समय आपने जिस पिङ्गल नामक चोरको मौतके मुँहसे बचाकर धर्म-ज्ञान दिया था, वह घूमता-फिरता फिर तापसपुरमें पहुँच गया। वहाँ वह एक दिन रातको कायोत्सर्ग-प्रतिमा किये हुए श्मशानमें पड़ा था। इसी समय उसने देखा, कि एक जगह चिता सुलग रही है। क्रमशः उस चिताकी ज्वाला उसके पास आती मालूम पड़ी। परन्तु साधु-शिरोमणि पिङ्गल धर्म-ध्यानमें अटल बना रहा। थोड़ी देरमें उस चिता की आगने उसे जला दिया और वह समाधिमरण करके देवता हो गया। मैं वही पिङ्गल हूँ। यदि आपने मुझे उस समय मृत्युके मुँहसे नहीं बचा लिया होता, तो मेरी यह अवस्था कैसे होती? मैं देवता कैसे होता? उलटे अबतक मैं किसी नरकमें जाकर दुःख भोग करता होता। परन्तु आपकी कृपासे मुझे दिव्य देवलोक प्राप्त हुआ। इसलिये हे देवी! तुम्हारी

सदा जय हो।' यह कह, दमयन्ती पर सात करोड़ सुवर्ण मुद्राओंकी वृष्टि कर, वह देवता तत्काल अन्तर्ध्यान हो गये। अर्हन्त-धर्मका यह साक्षात् चमत्कार देखकर, राजा ऋतुपर्णके मनमें बड़ा भारी आश्चर्य हुआ।

इसके बाद दमयन्तीके पीहरसे जो हरिमित्र नामक ब्राह्मण यहाँ आया था, उसने राजासे कहा,—"हे महाराज! दमयन्ती आपके यहाँ बहुत दिनोंतक रह चुकी। इसलिये अब आप इसे अपने माता-पिताके पास जानेकी आज्ञा दे दें। कारण, वे लोग इसके लापता हो जानेका हाल सुनकर बड़े ही दुःखसे दिन बिता रहे हैं। दिन-रात रोते-रोते इसकी माँ पगली हो रही है।"

यह सुन, राजाने रानी चन्द्रयशाकी सम्मति लेकर, दमयन्तीको हरिमित्रके साथ पिताके घर जानेकी आज्ञा दे दी। साथ ही राजाने उसके संग जानेके लिये अपने बहुतसे सैनिकोंको भी हुक्म दे दिया। क्रमशः वहाँसे चल कर वे लोग कुछ दिनों बाद विदर्भ-देशमें आ पहुँचे। उनके शुभागमनका समाचार सुनकर, विदर्भराज भीमरथको बड़ा आनन्द हुआ और वे दौड़े हुए दमयन्तीको देखने चले आये। दमयंतीने रथसे नीचे उतर कर उन्हें प्रणाम किया और एक मुद्दतके बाद मिलनेके कारण दोनोंकी आँखें भर आयीं। इसके बाद राजा भीमरथ बड़े हर्षसे दमयंतीको अपने महलोंमें ले आये और उसे रानीसे मिलाया। वर्षोंके वियोगके बाद उस

प्रकार आकस्मिक संयोग होनेके कारण दोनों माँ बेटी बड़ी देरतक गले मिल-मिल कर रोती रही। अपनी पुत्रीकी दुर्बलता और उसकी दुर्दशाकी बातें याद करके रानी पुष्पदंता और भी व्याकुल हो-होकर रोने लगीं। इसी प्रकार प्रेमकी फाँसमें वे दोनों बड़ी देरतक बँधी रही। तदनंतर राजाने सबका रोना-धोना बन्द करा, इस प्रिय-मिलनके उपलक्षमें गुरु और देवताकी पूजाके लिये खूब धूमधाम और तैयारियाँ करानी शुरू की। सात दिन तक बड़े ठाट-बाटसे विविध प्रकार की पूजायें और उत्सव आदि हुए।

"इसके बाद राजाने दमयंतीसे उसकी विपत्तिका ब्यौरेवार हाल पूछा, जिसके उत्तरमें दमयंतीने सब कुछ ज्यों-का त्यों कह सुनाया। सब सुनकर राजाने कहा,—"बेटी! तू कुछ भी चिंता न कर। चुप-चाप यहाँ पड़ी हुई व्रत-दान और जप-तपमें मन लगाओ। मैं, जैसे होगा वैसे, नलका अवश्य ही पता लगाऊँगा।" यह कह, उसे ढाढस बँधा, राजाने हरिमित्रको दमयंतीको यहाँ ले आनेके लिये पाँच सौ गाँव इनाममें दिये और उससे यह भी कहा, कि यदि तुम इसी तरह नलका भी पता लगा लाओगे, तो मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे डालूँगा।"

एक दिन सुसमारपुरसे राजा दधिपर्णका भेजा हुआ एक दूत किसी कार्यके निमित्त राजा भीमरथके पास आ पहुँचा। बातों ही बातमें नलकी चर्चा उस समय उस

सदा जय हो।' यह कह, दमयन्ती पर सात करोड़ सुवर्ण-मुद्राओंको वृष्टि कर, वह देवता तत्काल अन्तर्धान हो गये। अर्हन्त-धर्मका यह साक्षात् चमत्कार देखकर, राजा ऋतुपर्णके मनमें बड़ा भारी आश्चर्य हुआ।

इसके बाद दमयन्तीके पीहरसे जो हरिमित्र नामक ब्राह्मण वहाँ आया था, उसने राजासे कहा,—"हे महाराज ! दमयन्ती आपके यहाँ बहुत दिनोंतक रह चुकी। इसलिये अब आप इसे अपने माता-पिताके पास जानेकी आज्ञा दे दें। कारण, वे लोग इसके लापता हो जानेका हाल सुनकर बड़े ही दुःखसे दिन बिता रहे हैं। दिन-रात रोते-रोते इसकी माँ पगली हो रही है।"

यह सुन, राजाने रानी चन्द्रयशाकी सम्मति लेकर, दमयन्तीको हरिमित्रके साथ पिताके घर जानेकी आज्ञा दे दी। साथ ही राजाने उसके संग जानेके लिये अपने बहुतसे सैनिकों-को भी हुक्म दे दिया। क्रमशः वहाँसे चल कर वे लोग कुछ दिनों बाद विदर्भ-देशमें आ पहुँचे। उनके शुभागमनका समाचार सुनकर, विदर्भराज भीमरथको बड़ा आनन्द हुआ और वे दौड़े हुए दमयन्तीको देखने चले आये। दमयंतीने रथसे नीचे उतर कर उन्हें प्रणाम किया और एक मुद्दतके बाद मिलनेके कारण दोनोंकी आँखें भर आयीं। इसके बाद राजा भीमरथ बड़े हर्षसे दमयंतीको अपने महलोंमें ले आये और उसे रानीसे मिलाया। वर्षोंके वियोगके बाद इस

प्रकार आकस्मिक संयोग होनेके कारण दोनों माँ बेटी बड़ी देरतक गले मिल-मिल कर रोती रहीं। अपनी पुत्रीकी दुर्बलता और उसकी दुर्दशाकी बातें याद करके रानी पुष्पदता और भी व्याकुल हो-होकर रोने लगीं। इसी प्रकार प्रेमकी फाँसमें वे दोनों बड़ी देरतक बँधी रहीं। तदनंतर राजाने सबका रोना-धोना बन्द करा, इस प्रिय-मिलनके उपलक्षमें गुरु और देवताकी पूजाके लिये खूब धूमधाम और तैयारियाँ करानी शुरू की। सात दिन तक बड़े ठाट-बाटसे विविध प्रकार की पूजायें और उत्सव आदि हुए।

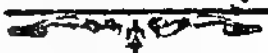
"इसके बाद राजाने दमयंतीसे उसकी विपत्तिका ब्योरेवार हाल पूछा, जिसके उत्तरमें दमयंतीने सब कुछ ज्योंका त्यों कह सुनाया। सब सुनकर राजाने कहा,—"बेटी! तू कुछ भी चिंता न कर। चुप-चाप यहाँ पड़ी हुई व्रत-दान और जप-तपमें मन लगाओ। मैं, जैसे होगा वैसे, नलका अवश्य ही पता लगाऊँगा।" यह कह, उसे ढाढस बँधा, राजाने हरिमित्रको दमयंतीको यहाँ ले आनेके लिये पाँच सौ गाँव इनाममें दिये और उससे यह भी कहा, कि यदि तुम इसी तरह नलका भी पता लगा लाओगे, तो मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे डालूँगा।"

एक दिन सुसमारपुरसे राजा दधिपर्णका भेजा हुआ एक दूत किसी कार्यके निमित्त राजा भीमरथके पास आ पहुँचा। बातों ही बातमें नलकी चर्चा चल पड़ी। उस समय उस दूतने

राजासे कहा,—"हे महाराज! इन दिनों महाराजा नलका पुराना रसोइया हमारे राजाके यहाँ नौकरी कर रहा है। वह सूर्यकी किरणोंसे ही सब तरहके पाक तैयार कर लेता है। वह कहता है, कि मैंने यह विद्या स्वयं राजा नलसे ही सीखी है और उन्होंने और भी बहुतसी कलाएँ उसे सिखलायी है।"

पास ही खड़ी-खड़ी दमयन्तीके कानोंमें भी दूतकी यह बात पड़ी और आशाकी एक पतली रेखा उसके हृदयमें खिंच गयी। उससे अब दूर बैठा न रहा गया। वह उसी समय राजाके पास आकर कहने लगी,—"पिताजी! मेरे स्वामीके समान रसोई तो दुनियामें कोई दूसरा नहीं बना सकता। फिर यह दूत किस रसोइये की इतनी बड़ाई कर रहा है? वह कैसी रसोई बनाता है? उस रसोइयेका रंग-रूप कैसा है? यह सब बातें आप भली भाँति जाँच पूँछ लें। मेरा जी तो यही कहता है, कि स्वयं राजा नल ही वहाँ वेष बदले हुए रसोइयेका काम कर रहे हैं।"

राजाको भी दमयन्तीकी यह बात जँच गयी। उन्होंने उसी समय अपने एक नौकरको बुलाकर उसे सब बातें भली भाँति समझाते हुए सुसमारपुर भेज दिया। दमयन्तीने उसे वे दो श्लोक सिखला दिये और कहा, कि उसी रसोइयेके पास पहुंचकर तुम ये दोनों श्लोक सुनाना, यदि वे वेष बदले हुए स्वयं राजा नल होंगे, तो अवश्य ही यह बात सुनते ही उनकी आंखोंमें आंसू भर आयेंगे। कुछ दिनों बाद वह राज-सेवक



यहाँ आया और राजाके नये रसोइयेका पता लगाता हुआ एक बड़े ही काले-कलूटे और तुम्हारी तरह कूबड़े रसोइयेके पास आकर सोचने लगा, कि भला राजा नल ऐसे ही थे ? यह राजकुमारीका कोरा भ्रम ही है। भला कहाँ सूर्य और कहाँ जुगनू ! कहाँ कामदेवको भी लज्जित करने वाले सुन्दर-स्वरूप राजा नल और कहाँ यह काला-कलूटा कूबड़ा ! तो भी उसने आशाका अवलम्बन कर दमयन्तीके सिखलाये हुए वे दोनों श्लोक उस कुत्सित कुरूप रसोइयेको सुनाये। सुनते ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आये, पर उसने मुँहसे कुछ भी नहीं कहा, इसलिये वह लाचार होकर लौट गया। इस बार राजकुमारी दमयन्तीने फिर मुझे इस ओर भेजा है और मुझे भी वे ही दोनों श्लोक सुनानेकी आज्ञा दी है। यही तो राजकुमारी दमयन्तीकी दुःख कहानी है। अब आगे उसके भाग्यमें क्या बदा है, यह कौन जानता है ?"

उस ब्राह्मणके मुँहसे दमयन्तीकी यह समस्त कथा सुन-कर नल बड़े ही आश्चर्यित, दुःखित और आनन्दित हुए। दुःख, आश्चर्य और आनन्द—ये तीनों भाव क्रमसे उनके हृदय पर अधिकार करते रहे और इसीलिये कभी तो उनके चेहरे-पर उदासी छा जाती, कभी आश्चर्यके मारे उनकी स्वभावतः बड़ी-बड़ी आँखें और भी बड़ी हो जातीं और कभी हर्षकी हलकी छाया उनके चेहरेपर झलकने लगती थी। सब सुनकर नलने कहा,—"हे ब्राह्मण देवता ! तुमने मुझे

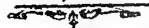
चित्र कथा सुनायी! अब आओ, मेरे डेरेपर चलकर अपनी चरण-रजसे मेरा स्थान पवित्र करो।"

यह कह, वे उस ब्राह्मणको अपने स्थानपर ले गये और वहाँ उसका उचित आदर-सत्कार कर, अपनी बनायी हुई सुन्दर रसोई उसे खिलायी। इसके बाद जब वह ब्राह्मण लौटकर जाने लगा, तब उन्होंने राजासे मिले हुए सब वस्त्रालङ्कार आदि उस ब्राह्मणको दे दिये। वह सब सामान लिये हुए वह ब्राह्मण कुण्डिनपुरमें चला आया और उसने कूबड़ेसे जितनी बातें हुई थी, वह सब दमयन्तीसे कह सुनायीं। तदनन्तर उसने राजा और रानीसे भी अपने सुसमारपुर जाने और कूबडेसे मिलनेकी सारी बातें कह सुनायीं। साथ ही उसने उस कूबडेके हाथकी जैसी सुन्दर-स्वादिष्ट रसोई खायी थी, उसके अनुपम स्वादकी भी बार-बार प्रशंसा की। उसने कूबडेसे लाख मुहरें और उत्तमोत्तम वस्त्रालङ्कार बिदाईके समय पाये थे, यह बात भी उसने नहीं छिपायी। सब बातोंके साथ उसने यह भी कह डाला, कि मैंने सुना है, कि उस कूबडेने एक ऐसे मतवाले हाथीको वशमें कर लिया था, जिसे कोई आदमी वशमें नहीं ला सका था और जो नगर-भरको हैरान किये हुए था। साथही उसने यह बात भी उन लोगोंको बतलायी, कि उस कूबडेमें बड़े-बड़े गुण हैं, इसीलिये वहाँके राजाका वह परम कृपापात्र हो रहा है।

विप्रके मुँहसे यह सब बातें सुन, दमयन्तीने कहा,—"पिताजी! मैंने इन विप्र महोदयकी

ध्यानसे सुनी हैं और उन्हीके आधारपर मैं यह कहनेका साहस करती हूँ, कि वे आपके दामादके सिवा दूसरे कोई व्यक्ति नहीं है। हो सकता है, कि किसी कारणसे उनकी पीठ पर कूबड़ निकल आया हो। पाक-शास्त्रमें ऐसी प्रवीणता और दान करनेकी ऐसी उदारता उनके सिवा त्रिभुवनमें दूसरे किसी मनुष्यमें नहीं है। इसीलिये मैं कहती हूँ, कि वे चाहे इस समय कूबडे भले ही हो गये हों, पर वे आपके जमाईके सिवा और कोई नहीं हैं। आप किसी तरह एक बार उनको यहाँ बुलवाइये, तो मैं उनकी चितवन और चाल-ढालसेही पहचान लूँगी, कि वे मेरे स्वामी है या नहीं।"

राजा भीमरथने कहा,—"अच्छा, बेटी! तू घबरा मत। मैं उन्हें बुलानेकी चेष्टा करता हूँ। मैं तेरे लिये दुबारा स्वयंवर रचानेकी घोषणा करके राजा दधिपर्णको निमन्त्रण भेजता हूँ। यदि वे राजा नल ही होंगे, तो यह अद्भुत बात सुनतेही व्याकुल होकर यहाँ चले आवेंगे, क्योंकि अपनी स्त्रीको भला कौन किसी दूसरेके पास जाने दे सकता है? उस बार स्वयंवरके अवसर पर राजा दधिपर्ण यहाँ आये हुए थे और उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी, कि तू उन्हें ही वर ले; पर जब तूने सबका तिरस्कारकर राजा नलके गलेमें वर-माला डाल दी, तब राजा दधिपर्णका जी बहुत ही छोटा हो गया। इसलिये इस बार फिर स्वयंवर होनेकी बात [illegible] वे [illegible] हुए यहाँ चले आयेंगे। मैं अपने दूतसे [illegible] शीघ्र ही



चित्र कथा सुनायी! अब आओ, मेरे डेरेपर चलकर अपनी चरण-रजसे मेरा स्थान पवित्र करो।"

यह कह, वे उस ब्राह्मणको अपने स्थानपर ले गये और वहाँ उसका उचित आदर-सत्कार कर, अपनी बनायी हुई सुन्दर रसोई उसे खिलायी। इसके बाद जब वह ब्राह्मण लौटकर जाने लगा, तब उन्होंने राजासे मिले हुए सब वस्त्रालङ्कार आदि उस ब्राह्मणको दे दिये। वह सब सामान लिये हुए वह ब्राह्मण कुण्डिनपुरमें चला आया और उसने कूबड़ेसे जितनी बातें हुई थीं, वह सब दमयन्तीसे कह सुनायीं। तदनन्तर उसने राजा और रानीसे भी अपने सुसमारपुर जाने और कूबड़ेसे मिलनेकी सारी बातें कह सुनायीं। साथ ही उसने उस कूबड़ेके हाथकी जैसी सुन्दर-स्वादिष्ट रसोई खायी थी, उसके अनुपम स्वादकी भी बार-बार प्रशंसा की। उसने कूबड़ेसे लाख मुहरें और उत्तमोत्तम वस्त्रालङ्कार विदाईके समय पाये थे, यह बात भी उसने नहीं छिपायी। सब बातोंके साथ उसने यह भी कह डाला, कि मैंने सुना है, कि उस कूबड़ेने एक ऐसे मतवाले हाथीको वशमें कर लिया था, जिसे कोई आदमी वशमें नहीं ला सका था और जो नगर-भरको हैरान किये हुए था। साथही उसने यह बात भी उन लोगोंको बतलायी, कि उस कूबड़ेमें बड़े-बड़े गुण हैं, इसीलिये वहाँके राजाका वह परम कृपापात्र हो रहा है।

विप्रके मुँहसे यह सब बातें सुन, दमयन्तीने अपने पितासे कहा,—"पिताजी! मैंने इन विप्र महोदयकी कुल बातें बड़े

ध्यानसे सुनो हैं और उन्हींके आधारपर मैं यह कहनेका साहस करती हूँ, कि वे आपके दामादके सिवा दूसरे कोई व्यक्ति नहीं हैं। हो सकता है, कि किसी कारणसे उनको पीठ पर कूबड़ निकल आया हो। पाक-शास्त्रमें ऐसी प्रवीणता और दान करनेको ऐसी उदारता उनके सिवा त्रिभुवनमें दूसरे किसी मनुष्यमें नहीं है। इसीलिये मैं कहती हूँ, कि वे चाहे इस समय कूबड़े भले ही हो गये हों, पर वे आपके जमाईके सिवा और कोई नहीं है। आप किसी तरह एक बार उनको यहाँ बुलवाइये, तो मैं उनको चितवन और चाल-ढालसेही पहचान लूँगी, कि वे मेरे स्वामी हैं या नहीं।"

राजा भीमरथने कहा,—"अच्छा, बेटी! तू घबरा मत। मैं उन्हें बुलानेकी चेष्टा करता हूँ। मैं तेरे लिये दुबारा स्वयंवर रचानेकी घोषणा करके राजा दधिपर्णको निमन्त्रण भेजता हूँ। यदि वे राजा नल ही होंगे, तो यह अद्भुत बात सुनतेही व्याकुल होकर यहाँ चले आवेंगे, क्योंकि अपनी स्त्रीको भला कौन किसी दूसरेके पास जाने दे सकता है? उस बार स्वयंवरके अवसर पर राजा दधिपर्ण यहाँ आये हुए थे और, उनको यह हार्दिक अभिलाषा थी, कि तू उन्हें ही वर ले, पर जब तूने सबका तिरस्कारकर राजा नलके गलेमें वर-माला डाल दी, तब राजा दधिपर्णका जी बहुत ही छोटा हो गया। इसलिये इस बार फिर स्वयंवर होनेकी बात सुनते ही वे दौड़े हुए यहाँ चले आयेंगे। मैं अपने दूतसे उन्हें कहला भेजूँगा, कि शीघ्र ही



पुनर्मिलन

जब उस दूतको गये कई दिन हो गये और राजा दधिपर्णने कुण्डिनपुर जानेके बारेमें चूँ तक नहीं की, तब तो राजा नल बेतरह घबराये और उन्होंने एक दिन बातों-ही-बातमें यह बात भी राजा दधिपर्णके सामने छेड़ दी। उनकी बातके उत्तरमें राजा दधिपर्णने कहा,—"भाई! स्वयंवरको बहुत ही थोड़े दिन रह गये है, इसलिये मेरा इतने कम समयमें वहाँ पहुँचना एकबारगी असम्भव है। इसीलिये मैं इस मामलेमें एकदम चुप हूँ और वहाँ जानेका विचार तक नहीं करता।"

यह सुन, कूबड़े नलने कहा,—"महाराज! आप इस तरह हिम्मत क्यों हारते हैं? मैं तो आपसे कही चुका हूँ, कि इस संसारमें कोई ऐसी कला नहीं, जो मेरे स्वामी राजा नलने मुझे नहीं सिखायी हो। फिर मेरे रहते हुए आप इतने नाउम्मीद क्यों होते हैं? भला मुझसा सेवक पास रहते हुए आप

संसारका कौनसा काम नहीं कर सकते? अभी दमयन्तीके स्वयंवरको छः पहर बाकी हैं। यदि आप इतने समयके भीतर विदर्भ-राजनन्दिनीको देखना चाहते हों, तो अभी एक तेज घोड़ों वाला रथ मँगवाकर मेरे हवाले कीजिये। बस देखिये, मैं कल तड़के ही आपको कुण्डिनपुरमें उतार देता हूँ या नहीं!"

कुबड़ेकी यह उत्साह-पूर्ण बात सुन, राजा दधिपर्ण बड़े प्रसन्न होकर बोले,—"जाओ, तुम मेरी अश्वशालामें जाकर अपनी पसन्दके मुताबिक घोड़े चुन लो और गाड़ीखानेमें जाकर एक अच्छासा रथ पसन्द कर लाओ।"

यह सुनते ही राजा नलने एक सुन्दर और मज़बूत रथ, तथा दो उत्तम लक्षणोंवाले घोड़े पसन्द कर, बात-की-बातमें घोड़ोंको रथमें जोत कर, राजासे कहा,—"महाराज! अब देर न कीजिये, शीघ्र ही सवार हूजिये, रथ तैयार है।"

यह सुनते ही राजा रथपर आ सवार हुए। कुबड़ेने घोड़ोंकी रास अपने हाथमें ली। इसके बाद दो चँवर डुलानेवाले, एक छत्र उठानेवाला और एक नौकर—ये चार आदमी और उसी रथपर आ बैठे। सबके भली भाँति आसन ग्रहण कर लेनेपर नलने बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँक दिया। वे हवासे बातें करते हुए दौड़ चले। घोड़ोंकी यह अद्भुत तीव्र गति देख, राजा दधिपर्ण बड़े ही विस्मित हुए। उन्होंने सोचा,—"यह कुबड़ा बड़े ही गज़बका आदमी है। यह जिस कलाको जानता है, उसे

सच है, यह

वसुन्धरा अनेक रत्नोंकी खान है। इसमें एक-से-एक बढ़कर नर-रत्न पड़े हुए हैं।" इधर राजा यही सब सोच रहे थे, उधर तीरकी तरह सनसनाते जाते हुए रथके ऊपरसे राजा दधिपर्णका दुपट्टा नीचे गिर गया। यह बात राजा दधिपर्णको तत्काल नहीं मालूम हुई। उन्होंने इस बातकी सूचना कूबड़ेको बड़ी देरसे दी। उनकी बात सुन, कूबड़-वेशधारी नलने कहा,—"महाराज! आपका दुपट्टा जिस स्थानपर गिरा है, वह यहांसे पच्चीस योजन पीछे छूट गया। मैं इस समय घोड़ोंको बड़ी ही धीमी चालसे लिये जा रहा हूँ, नहीं तो अबतक वह स्थान पचास योजन पीछे पड़ गया होता।" यह बात सुनकर राजा दधिपर्ण बड़े अचम्भेमें पड़े। उन्होंने कहा,—"भाई! तुम तो बड़े ही विचित्र सारथी मालूम पड़ते हो। तुम्हारी यह असाधारण अश्व-विद्या देखकर मैं विस्मित हो गया हूँ। मेरी तो यही इच्छा होती है, कि तुमसे यह विद्या सीख लूँ। इसके बदलेमें मैं भी तुम्हें अपनी गणित-विद्या सिखला दूँगा। मुझे गणित-विद्याका ऐसा अच्छा अभ्यास है, कि बात-की-बातमें मैं हज़ारों-लाखोंकी गिनती बतला दे सकता हूँ। वह जो सामने पीपलका पेड़ दिखाई देरहा है, उसपर कितने पत्ते और फल हैं, यह मैं अभी बतला दे सकता हूँ; पर इसकी परीक्षा करनेका अभी समय नहीं है, क्योंकि हमें शीघ्र ही कुण्डिनपुर पहुँचना है। वहांसे लौटते समय मैं तुम्हें अपनी विद्याका चमत्कार दिखला दूँगा।"

यह सुनते ही नलने कहा,—"महाराज! मैं इतनी तेज़ीसे रथ हाँके आ रहा हूँ, तो भी आपको यह सन्देह बना ही हुआ है, कि कहीं हम वहाँ देरसे तो नहीं पहुँचेंगे? यदि यह सन्देह आपके मनमें हो, तो उसे अभी दिलसे निकाल बाहर कर दीजिये और यह कहिये, कि उस वृक्षपर कितने फल लगे हुए हैं?"

राजाने झटपट उत्तर दिया,—"इस समय उस पेड़ पर अठारह हज़ार फल मौजूद हैं।"

यह सुनते ही नलने कहा,—"महाराज! मैं अभी आपकी गणनाकी परीक्षा करके देखता हूँ, कि आपका कहना कहाँतक ठीक है।" यह कह, उन्होंने रथको रोक दिया और उस वृक्षके पास आ, उसको जड़के पासका धड़ पकड़ कर इस ज़ोरसे उस पेड़को हिलाया, कि उसपर जितने फल लगे हुये थे, वे सब भरभराकर नीचे गिर पड़े। इसके बाद जब उन्होंने उन फलोंको गिनती की, तब राजाकी बतलाई हुई गिनती बिलकुल ठीक निकली। एक भी फल कम या अधिक नहीं निकला। यह देखकर नलको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और वे राजाकी गणित-विद्याका लोहा मान गये।

नलने कहा,—"महाराज! आपकी इस अद्भुत गणित विद्याने मुझे अचम्भेमें डाल दिया। सचमुच आप इस विद्याके पारगामी आचार्य हैं। कृपाकर मुझे यह विद्या इसी समय सिखला दीजिये, तो मैं भी आपको अपनी अश्व-विद्या सिखला दूँगा। आइये, अभी हमारा विद्या-विनिमय हो जाये।"



रे हवासे बातें करते हुए दौड़ चले। घोड़ोंकी यह अद्भुत तीव्र गति देख, राजा

यह सुनते ही नलने कहा,—"महाराज! मैं इतनी तेज़ीसे रथ हाँके आ रहा हूँ, तो भी आपको यह सन्देह बना ही हुआ है, कि कहीं हम यहाँ देरसे तो नहीं पहुँचेंगे? यदि यह सन्देह आपके मनमें हो, तो उसे अभी दिलसे निकाल बाहर कर दीजिये और यह कहिये, कि उस वृक्षपर कितने फल लगे हुए हैं?"

राजाने झटपट उत्तर दिया,—"इस समय उस पेड़ पर अठारह हज़ार फल मौजूद हैं।"

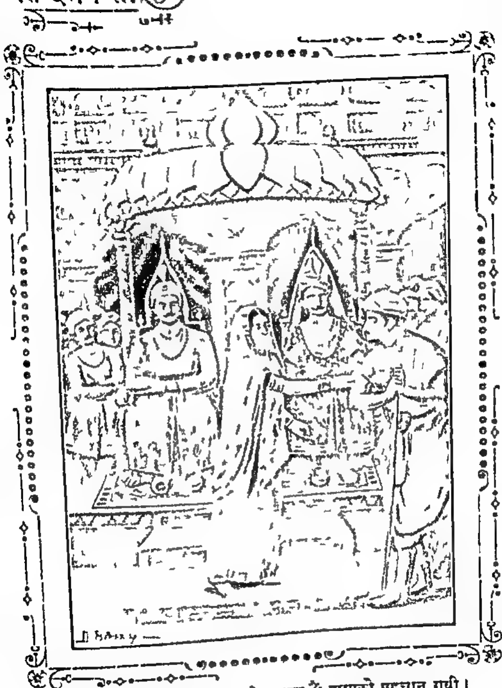
यह सुनते ही नलने कहा,—"महाराज! मैं अभी आपकी गणनाकी परीक्षा करके देखता हूँ, कि आपका कहना कहाँतक ठीक है।" यह कह, उन्होंने रथको रोक दिया और उस वृक्षके पास आ, उसकी जड़के पासका धड़ पकड़ कर इस ज़ोरसे उस पेड़को हिलाया, कि उसपर जितने फल लगे हुये थे, वे सब भरभराकर नीचे गिर पड़े। इसके बाद जब उन्होंने उन फलोंकी गिनती की, तब राजाकी बतलाई हुई गिनती बिलकुल ठीक निकली। एक भी फल कम या अधिक नहीं निकला। यह देखकर नलको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और वे राजाकी गणित-विद्याका लोहा मान गये।

नलने कहा,—"महाराज! आपकी इस अद्भुद गणित विद्याने मुझे अचम्भेमें डाल दिया। सचमुच आप इस विद्याके पारगामी आचार्य हैं। कृपाकर मुझे यह विद्या इसी समय सिखला दीजिये, तो मैं भी आपको अपनी अश्व-विद्या सिखला दूँगा। आइये, अभी

अबतक अन्यान्य राजा-राजकुमार भी अवश्य ही आये होते। राजा इसी सोच-विचारमें पड़े हुए मन-ही-मन कुछ क्रोधित कुछ शङ्कित और कुछ चकित हो रहे थे।

इधर राजा भीमरथने जब दमयन्तीसे आकर कूबड़ेका दिया हुआ उत्तर कह सुनाया, तब उसने कहा,—"पिताजी! बस अब तो एक ही बातकी परीक्षा करनी और बाक़ी है। आप मुझे उस व्यक्तिके पास ले चलिये और उसको मेरी देहका कोई अङ्ग स्पर्श करनेकी आज्ञा दीजिये। ऐसा करने पर यदि आप-से-आप मेरे सारे अङ्ग सिहर उठें और पुलकावली छा जाये, तो आप समझ लेंगे, कि वह मेरे पतिके सिवा और कोई नहीं है।"

यह सुन, राजा भीमरथ दमयन्तीको लिये हुए पुनः वहीं आ पहुँचे, जहाँ राजा दधिपर्ण और कूबड़ेमें इस अद्भुत स्वयंवरके ढोंगकी चर्चा छिड़ी हुई थी। वहाँ आते ही राजा भीमरथने राजा दधिपर्णसे कहा, कि आप कृपाकर अपने इस अद्भुत सेवकको मेरी पुत्रीकी दाहिनी भुजा अपनी अङ्गुलीसे स्पर्श करनेकी आज्ञा दीजिये। राजा दधिपर्णने वैसा ही किया। उनकी आज्ञाके अनुसार कूबड़ेने दमयन्तीके दाहिने हाथको अपनी अँगुलीसे छू दिया। छूते ही दमयन्तीके सारे



"नाथ ! अब अधिक न सताइये । अब मैं आपको पहचान गयी ।
अब भला आप कहाँ छिप सकते हैं ?" (पृष्ठ ६४)

यह कह, उसने कूबडेका हाथ बड़े ज़ोरसे थाम लिया और बल-पूर्वक उसे पकड़ कर अपने साथ ले चली। अब तो सबको इस बातका निश्चय हो गया, कि यह कूबड़ा और कोई नहीं, स्वयं राजा नल हैं। इस काली-कुत्सित और कूबड़ी कायाके अन्दर उन्हीं निषध-नरेशकी महान् आत्मा छिपी हुई है। यह देख, सब लोग मारे आनन्दके अधीर हो गये। राजा भीमरथके आनन्दकी तो कोई सीमा ही न रही। कन्या और जामाताके पुन एक साथ मिल जानेका समाचार पाकर दमयन्तीकी माताको जो हर्ष हुआ, वह वर्णनसे बाहर है। थोड़ी ही देरमें यह शुभ संवाद सारे नगरमें फैल गया।

इसके बाद दमयन्ती अपने काले-कूबड़े स्वामीको साथ लिये हुई अपने महलोंमें चली आयी। उसने उनके इस बदले हुए घृणित रूपको देखकर तनिक भी उदासी या अप्रसन्नता नहीं प्रकट की, क्योंकि वह पतिव्रताओंकी इस नीतिको भली भाँति जानती थी, कि—

"वृद्ध रोगवश जड धनहीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥"

दमयंती सच्ची पतिव्रता थी। स्वामी रोगी हो, क्रोधी हो, दीन हो, दुखिया हो, अंधा हो, बहरा हो, लंगड़ा हो, लूला हो, कूबरा हो, काना हो, पर वही हमारा सर्वस्व है

यह कह, उसने कूबड़ेका हाथ बड़े ज़ोरसे थाम लिया और बल पूर्वक उसे पकड़ कर अपने साथ ले चली। अब तो सबको इस बातका निश्चय हो गया, कि यह कूबड़ा और कोई नहीं, स्वयं राजा नल है। इस काली-कुत्सित और कूबड़ी कायाके अन्दर उन्हीं निषध-नरेशकी महान् आत्मा छिपी हुई है। यह देख, सब लोग मारे आनन्दके अधीर हो गये। राजा भीमरथके आनन्दकी तो कोई सीमा ही न रही। कन्या और जामाताके पुन एक साथ मिल जानेका समाचार पाकर दमयन्तीकी माताको जो हर्ष हुआ, वह वर्णनसे बाहर है। थोड़ी ही देरमें यह शुभ सवाद सारे नगरमें फैल गया।

इसके बाद दमयन्ती अपने काले-कूबड़े स्वामीको साथ लिये हुई अपने महलोंमें चली आयी। उसने उनके इस बदले हुए घृणित रूपको देखकर तनिक भी उदासी या अप्रसन्नता नहीं प्रकट की, क्योंकि वह पतिव्रताओंकी इस नीतिको भली भाँति जानती थी, कि—

"वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥"

दमयंती सच्ची पतिव्रता थी। स्वामी रोगी हो, क्रोधी हो, दीन हो, दुखिया हो, अधा हो, बहरा हो, लंगड़ा हो, लूला हो, कुबरा हो, काना हो, पर वही हमारा सर्वस्व है।

यह कह, उसने कूबड़ेका हाथ बड़े ज़ोरसे थाम लिया और बल पूर्वक उसे पकड़ कर अपने साथ ले चली। अब तो सबको इस बातका निश्चय हो गया, कि यह कूबड़ा और कोई नहीं, स्वयं राजा नल हैं। इस काली-कुत्सित और कूबड़ी कायाके अन्दर उन्हीं निषध-नरेशको महान् आत्मा छिपी हुई है। यह देख, सब लोग मारे आनन्दके अधीर हो गये। राजा भीमरथके आनन्दकी तो कोई सीमा ही न रही। कन्या और जामाताके पुन एक साथ मिल जानेका समाचार पाकर दमयन्तीकी माताको जो हर्ष हुआ, वह वर्णनसे बाहर है। थोड़ी ही देरमें यह शुभ सवाद सारे नगरमें फैल गया।

इसके बाद दमयन्ती अपने काले-कूबड़े स्वामीको साथ लिये हुई अपने महलोंमें चली आयी। उसने उनके इस बदले हुए घृणित रूपको देखकर तनिक भी उदासी या अप्रसन्नता नहीं प्रकट की, क्योंकि वह पतिव्रताओंकी इस नीतिको भली भाँति जानती थी, कि—

"वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥"

दमयन्ती सच्ची पतिव्रता थी। स्वामी रोगी हो, क्रोधी हो, दीन हो, दुखिया हो, अंधा हो, बहरा हो, लंगड़ा हो, लूला हो, कुबरा हो, काना हो, पर वही हमारा सर्वस्व है

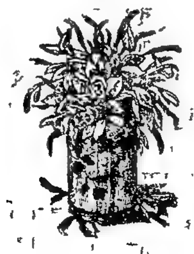
यही उसकी विमल धारणा थी। इसीलिये उसने नलके कूबड़े-कुत्सित रूपमें भी अपने हृदयेश्वरके उसी राजराजेश्वर-रूपको देखा, जो सदा सोते-जागते, उठते-बैठते, घर-बाहर, सब समय और सब जगह उसकी आँखोंके सामने घूमता रहता था।

एकान्तमें आते ही आँखोंमें आँसू ला, गद्गद वचनसे दमयन्तीने कहा,—"नाथ! किस अपराधपर आपने दासीको इतने दिन वियोगका दण्ड दिया? अपने जानते तो मैंने मन-वचन और कर्मसे कोइ ऐसा अपराध नहीं किया था।"

अब तो नलसे नहीं रहा गया। उनकी आँखें भी पिछली बातें याद कर भर आयीं। अपने किये हुए दमयंती-त्याग रूपी कुकर्मको यादकर उनका कलेजा मुँहको आने लगा। प्राणोंके परदे-परदेमें एक ही साथ सौ-सौ बिच्छू डंक मारने लगे। उन्होंने दमयन्तीकी बातका कुछ भी उत्तर न दे, केवल अपनी आँखोंमें छाये हुए अश्रु-जलसे ही अपने मनोभावका उसे परिचय दे दिया और उसी समय नागके दिये हुए श्रीफल और सन्दूकचीसे वस्त्राभूषण निकाल-कर अङ्गोंमें धारण कर लिये। उन वस्त्राभूषणको धारण करते हुए नलका रूप पूर्ववत् हो गया। वही रूप, वही यौवन, वही श्री फिर लौट आयी। मानों उस कूबड़े-कुरूपको दमयन्ती देवीके दर्शनोंसे देवत्व प्राप्त हो गया। नलका इस प्रकार रूप-परिवर्त्तन होते ही बारह वर्षोंके विरहसे व्याकुल दमयन्ती

उपहार राजाको भेंट किये। उसने दमयन्तीको पहचानकर, उसके किये हुए पूर्व उपकारोंको स्मरण कर उसे भी बहुतसी चीजें भेंटमें दीं।

तदनन्तर दमयन्तीने दूत भेजकर राजा ऋतुपर्ण, रानी चन्द्रायण और राजकुमारी चन्द्रवतीको भी वहीं बुलवा लिया। वह वसन्त-श्रीशेखरको भी नहीं भूली। उसने उसे भी बुलवाया। बड़ी धूमधामसे इन अतिथियोंका आदर-सत्कार किया गया। सब लोग एक महीनेतक वहाँ रह गये और सारे नगरमें इस मधुर मिलनकी खुशीमें महीने भरतक आनन्द-उत्सव हुआ किये। देखते-देखते महीने भरका समय एक क्षणके समान व्यतीत हो गया। सच है, खुशीके दिन बीतते देर नहीं लगती।



उपसंहार

एक दिन राजा भीमरथ राजसभामें बैठे हुए थे। समस्त मन्त्री पारिषद् और शूर-सामन्त भी अपने-अपने योग्य स्थानोंपर बैठे हुए थे। इसी समय आकाश-मार्गसे उतरकर एक देवता वहाँ आ पहुँचा और उच्च स्वरसे कहने लगा,—"देवी दमयन्ती! याद करो, तुमने तापसपुरमें जिन तपस्वियोंके मुखियाको प्रतिबोध देकर शुभोदय करनेवाला चारित्र ग्रहण कराया था, मैं वही हूँ और उग्रतपके प्रभावसे सौधर्म-देवलोकमें जा, श्रमूत श्रीकेसर नामक देवता हो गया हूँ। तुमने मिथ्या धर्म छुड़ाकर मुझे अरिहन्त परमात्माके धर्ममें प्रवृत्त कराया, इससे मुझे यह दिव्य फल प्राप्त हुआ है। इसलिये हे सती! मैं तुम्हारा बड़ा कृतज्ञ हूँ और हृदयसे तुम्हें बार-बार धन्यवाद देता हूँ।"

यह कह, उस देवताने सात करोड़ मुहरोंकी वृष्टिकी और झटपट वहाँसे प्रस्थान किया। इसके बाद वसन्त श्री-

शेखर, दधिपर्ण, ऋतुपर्ण, भीमरथ और अन्यान्य राजा-महाराजों तथा मन्त्री-सामंतोंने मिलकर नलका वहीं राज्याभिषेक किया। इसके बाद सभी सामंत राजाओंने अपने-अपने नगरसे अपनी-अपनी सेनाएँ कुण्डिनपुरमें बुलवा मँगवायीं।

ज्योतिषियोंके बतलाये हुए शुभ मुहूर्त्तमें इन सब सेनाओंके साथ राजा नलने कोसलापुरीकी यात्रा की। क्रमश यह सारी सेना अयोध्याके वनोंमें आ पहुँची। इसी समय राजा कूबरको खबर मिली, कि बहुत बड़ी सेना लिये हुए राजा नल यहाँ चढ़ आये हैं। यह खबर पाते ही कूबरके तो देवता कूच कर गये—भयके मारे उनके प्राण काँप गये। सेनाका यथास्थान पड़ाव डालकर राजा नलने एक दूतसे कूबरको कहला भेजा, कि यदि तुम इस बार जुआ खेलकर मुझे हरा दो, तो मेरी वर्त्तमान सम्पत्ति भी तुम्हारे हाथ लग जायेगी, नहीं तो तुम्हें मेरी पहली सम्पत्ति वापिस कर देनी होगी।

यह सन्देसा सुन, कूबरका प्राणभय दूर हो गया और वे फिर जुआ खेलनेके लिये राजा नलके पास आये। इस बार राजा दधिपर्णकी सिखलायी हुई विचित्र गणित-विद्याके प्रभावसे राजा नलने कूबरसे सारी राज्य-सम्पत्ति छीन ली। सच है, भाग्य सीधा होनेपर बिगड़ी बात भी बन जाती है।

अपना नष्ट राज्य हाथमें पाकर राजा नलने सारे राज्यमें अपने नामकी ढौंडी फिरवा दी। साथ ही कूबरको, उसके



"यह चाहे भला हो या बुरा, पर है तो अपना सगा भाई ही, इसलिये मुझे इसे माफ कर देना ही उचित है।" (पृष्ठ १०१)

पूर्वकृत समस्त अपराध क्षमाकर, फिर पहले होकी तरह युवराज बना दिया। उन्होंने सोचा,—"यह चाहे भला हो या बुरा, पर है तो अपना सगा भाई ही, इसलिये मुझे इसे माफ कर देना ही उचित है।"

राजा नलकी यह अद्भुत उदारता, दयालुता और क्षमाशीलता देख, सब लोग उनकी बार-बार प्रशंसा करने लगे। कूबरको भी अपने पूर्वकृत अविनयके लिये घोर पश्चात्ताप हुआ और वे रो-रोकर बार-बार उनसे क्षमा माँगने लगे। राजा नल और दमयन्तीने उन्हें पूरी तौरसे क्षमा प्रदान कर सन्तुष्ट कर दिया और सब लोगोंको इस बातकी चेतावनी दे दी, कि कोई कूबरकी पुरानी बातोंकी चर्चा न चलाये।

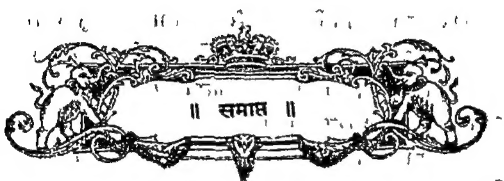
पतिप्राणा दमयन्तीके, सतीत्व, और पतिव्रतके प्रभावसे राजा नलका गया हुआ समस्त वैभव लौट आया, और वे फिर प्रबल प्रतापके साथ राज्य-शासन करने लगे। देश-देशके राजाओंने आकर उन्हें उत्तमोत्तम उपहार दिये और उनका कुशल समाचार पूछ, उनके वन-वास आदिकी कथाएँ सुन, उनके पुन: भाग्योदय होनेपर उन्हें बार-बार बधाई दी और हार्दिक हर्ष प्रकट किया।

क्रमसे राजा नलको कितने ही बालबच्चे हुए और उन्होंने गृहस्थाश्रमके सब सुख भली भाँति भोग किये। इस प्रकार राजा नलने हज़ार वर्ष तक आधे भरतखण्डपर राज्य किया।

इसके बाद एक दिन देवगतिको प्राप्त हुए निषध राजाके जीवने नीचे उतर, नलके पास आकर कहा,—"हे राजन्! अब तुम्हारे राज्य भोगकी अवधि पूरी हो गयी।"

देवताका यह वचन सुन, संसारसे वैराग पाये हुए राजा नलने अपने बड़े पुत्र राजकुमार पुष्कलको गद्दी पर बैठा, जिनसेन नामक आचार्यके चरणोंमें आश्रय ग्रहण कर, चारित्र-व्रत ग्रहण किया। तदनन्तर अन्त समयमें अनशन-व्रत धारण कर समाधि द्वारा मृत्यु प्राप्त कर नलका जीव कुबेर नामका देवता हुआ और दमयन्ती भी मरकर उनकी ही स्त्री हुई। क्रमशः वे दोनों काल पाकर मोक्षको प्राप्त हुए।

पतिव्रताओंकी ऐसी ही अद्भुत महिमा होती है। सती नारीके सतीत्वके बलसे उसके स्वामीका कदापि अमङ्गल नहीं हो सकता। जो नारी काय वचन-मनसे स्वामीकी ही आराधनामें दिन-रात लीन रहती है, उसका स्वामी घोर संकट समुद्रसे भी हँसते-हँसते पार हो जाता है। जो सती अटल पतिभक्ति और निरन्तर स्वामी सेवा करती हुई पुण्य-पवित्र जीवन व्यतीत करती है, वह अपने पुण्य-पतिव्रतसे इस संसारमें समस्त वैभव प्राप्त कर, परलोकमें भी सुखी होती है और जन्म-जन्ममें अपने स्वामीका सहवास प्राप्त करती है। दमयन्तीके आदर्श चरित्रसे यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है, कि स्त्रीके लिये पति-सेवा स्वामी-स्मरण और केशभिति प-


॥ समाप्त ॥